न्याय-प्रवेशिका

पं० [illegible] डी० ए० वी० कॉलेज

लाहौर कृत

[illegible]

[illegible] लाहौर.

[illegible]] [मूल्य ।)

ओ३म्

भूमिका

संस्कृत में न्यायविद्या पर बहुत सी पुस्तकें लिखी गई हैं, जिन में इस विद्या के सम्पूर्ण विषयों पर बड़े गहरे विचार किये गये हैं। पर वर्तमान काल में उन पुस्तकों से बहुत ही थोड़े लोग लाभ उठा सकते हैं, जो पहले कई वर्ष संस्कृत भाषा को सीखते हैं, और फिर इन कठिन ग्रन्थों को पढ़ने का अवकाश रखते हैं। अतएव संस्कृत न जानने वाले तो सभी, और संस्कृत जानने वालों में से भी बहुत से उन ग्रन्थों से कोई लाभ नहीं उठा रहे। इस लिए बहुत दिनों से, मेरा यह विचार था, कि अपनी मातृ-भाषा में इस विद्या की एक पुस्तक लिखी जाए, जिस से सर्व साधारण लाभ उठा सकें। इसी अवसर में मुझे बहुत से योग्य पुरुषों ने ऐसे पुस्तक की आवश्यकता जितलाई और उस के लिखने की प्रेरणा भी की, इस से मेरा वह विचार और भी दृढ होगया, और आज मैं उस विचार को कार्य-रूप में परिणत करता हूं॥

न्याय-शास्त्र में उन सभी नियमों का पूरा वर्णन आजाना चाहिये, जिन से न तो मनुष्य स्वयं किसी वस्तु के समझने में धोखा खाए, और न ही, वाद विवाद में किसी दूसरे से धोखा खाए। पर ये सारे नियम एक ही साथ सामने आजाने में बुद्धि धारण नहीं कर सकती, प्रत्युत व्यामोह होता है, इस लिए इस विषय पर दो अलग २ ग्रन्थ लिखने का निश्चय किया है। एक तो यह ग्रन्थ, इस में सरल रीति पर न्याय के मुख्य २ नियमों का वर्णन होगा। दूसरा एक पूर्ण-ग्रन्थ होगा, जिस में सारे नियमों का पूरा २ वर्णन होगा। यह ग्रन्थ विद्यार्थियों के लिए न्याय-शास्त्र में प्रवेश कराने वाला है, इस से इस का नाम न्यायप्रवेशिका रक्खा है।

राजाराम

उपोद्घात ।

न्याय विद्या के नाम और निर्वचन ।

न्याय का अर्थ है, अन्दर घुस जाना; तह में पहुंच जाना । न्यायालय में जाकर हरि कहता है, मैंने नाथ से इतना रुपया लेना है, नाथ कहता है, मैंने कोई नहीं देना । न्याया-धीश उन से प्रमाण मांगता है, उन के प्रमाणों को जांचता है, तथा नए प्रश्न और आक्षेप कर के उन के उत्तर सुनता है, और इस प्रकार जांच पड़ताल कर के बात की तह में पहुंच कर जो सत्य होता है, उस को निकाल कर रख देता है, यही न्याय है । जिस प्रकार यहां बात की तह में पहुंच कर सत्य को निकाल लाना न्याय है, इसी प्रकार प्रत्येक विषय में विचारणीय विषय की तह में पहुंच कर सत्य निकाल लाना न्याय कहलाता है, और जिन नियमों के द्वारा झूठ और सत्य परखा जाता है, उन नियमों का जिस में वर्णन हो, उस को **न्याय-विद्या** वा **न्याय-शास्त्र** कहते हैं । न्याय-विद्या को ही **तर्क-विद्या** वा **आन्वी-क्षिकी** भी कहते हैं* ॥

न्याय का प्रयोजन

यह नियम नहीं, कि हम जो कुछ जानते हैं, वह यथार्थ ही हो, यथार्थ भी होता है, मिथ्या भी होता है । एक प्यासा पथिक जंगल में दूर से पानी देखता है । वहां जाता है, पानी मिल जाता है, पीता है, प्यास बुझ जाती है । वही पथिक दूसरी बार मरु-भूमि में दूर से पानी देखता है । प्यास बुझाने के लिए दौड़कर वहां जाता है, वहां पहुंच कर अपनी थकावट और प्यास को अधिक बढ़ा लेने के अतिरिक्त

---

* तर्कविद्या = युक्ति की विद्या । आन्वी क्षिकी = सोच विचार से जानने की विद्या ।

और कोई फल नहीं पाता, क्योंकि पानी का वहां नाम नहीं है। इसी प्रकार मनुष्य सांप देखकर भागता है, वह रस्सी निकल पड़ती है, चांदी देखकर उठाता है, वह सीप निकल आता है। मनुष्य को बड़ा भरोसा आंखों से देखे विषय पर होता है, पर जब आंखों से देखे की भी यह दशा है, तो फिर दूसरे इन्द्रियों से जाने वा मन से सोचे वा दूसरे से सुने विषयों में तो और भी अधिक भूल का होना सम्भव है, सो कोई ऐसा उपाय निकालना चाहिये, जिस से हम भूलें नहीं, वा स्वयं अपनी भूल को पकड़ सकें। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए मुनियों ने उन नियमों का पता लगाया, जिन से किसी वस्तु का तत्त्व जान सकते हैं। झूठ और सत्य में भेद कर सकते हैं। मिले हुए झूठ और सत्य में से सत्य को निखेर सकते हैं। उन नियमों को मनुष्यमात्र के उपयोगी जानकर उनकी शिक्षा के लिए जो शास्त्र रचा, उसी का नाम न्याय शास्त्र है। ऐसे नियमों के जानने की आवश्यकता हर एक पुरुष को, हर एक विद्या के लिए, हर एक धर्म के लिए और हर एक कर्म के लिए है, अतएव कहा है—

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।
आश्रयः सर्वधर्माणां विद्योद्देशे प्रकीर्तिता॥

विद्याओं के उद्देश्य में यह न्याय-विद्या सारी विद्याओं का प्रदीप, सारे कर्मों का उपाय और सारे धर्मों का आश्रय बतलाई है। सारांश यह, कि न्याय हमें यह सिखलाता है, कि (१) किस तरह हम भूल से बच सकते हैं, (२) किस तरह अपनी भूल पकड़ सकते हैं (३) किस तरह दूसरे की भूल पकड़ सकते हैं (४) किस तरह दूसरे को उसकी भूल का निश्चय करा सकते हैं (५)

और यदि कोई वादविवाद में हमें धोखा देना चाहे, तो किस तरह उस से बच सकते हैं* ॥

न्याय नियमों का प्रकाश और न्याय-शास्त्र की रचना। विद्या कोई नई नहीं रची जाती, किन्तु एक रस रहने वाले नियमों का प्रकाश ही विद्या कहलाती है। जिस प्रकार ज्योतिर्विद्या कोई नए नियम घड़ती नहीं, किन्तु नभश्चरज्योतियों के जो गति आदि के नियम हैं, उन का केवल प्रकाश करती है। ज्योतिषी पत्री में पहले ही लिख देता है, कि अमुक दिन अमुक समय सूर्यग्रहण लगेगा। इस का यह अभिप्राय नहीं, कि ज्योतिषी ने ऐसा नियम बांध दिया है, इस लिए उस दिन उस समय ग्रहण लगेगा, किन्तु इस से इतना ही सिद्ध होता है, कि वह ग्रहचाल को जानता है। सो ज्योतिर्विद्या नभश्चरज्योतियों की गति आदि के नियमों का प्रकाशमात्र है, मनुष्य-कल्पित नहीं। और नियम अटल हैं, अनादि अनन्त हैं, उनको जहां जो कोई देखेगा, एक ही रूप में देखेगा, इस लिए हर एक देश की ज्योतिर्विद्या एक ही होगी। जिस अंश में विरोध होगा, उस अंश में अवश्य किसी की अविद्या निकलेगी। हां उन नियमों को प्रकाश करने के लिए शास्त्र मनुष्य रचता है। अतएव देश-भेद और मनुष्य-भेद से शास्त्र की भाषा, अध्याय और क्रम आदि में ही भेद होगा, पर विद्या में कोई भेद नहीं होगा। इसी प्रकार

---

* यद्यपि जो पुरुष दूसरे के धोखे को पकड़ सकता है, वह उस ढंग का धोखा दे भी सकता है, पर धोखा देना अन्याय है, धोखे से निकालना ही न्याय का काम है, उस में डालना नहीं, नैयायिक नैयायिक तभी रह सकता है, जब वह स्वयं कभी किसी को धोखा न दे ॥

न्यायविद्या किसी की मन घड़त नहीं, किन्तु जिन नियमों के द्वारा मनुष्य, वस्तुतत्त्व को जान लेता है, ज्ञात से अज्ञात का पता लगा लेता है, बात से बात निकाल लेता है, असत्य से सत्य को निखर लेता है, वाद विवाद में कोई धोखा दे, तो उस को पकड़ लेता है, उन नियमों का प्रकाशमात्र न्यायविद्या है। उन्हीं नियमों को संग्रह कर के गोतम मुनि ने न्यायशास्त्र की रचना की। गोतम मुनि ने जो न्याय के सूत्र रचे थे, उन पर वात्स्यायन मुनि ने भाष्य किया, भाष्य पर उद्योतकराचार्य ने न्यायवार्तिक लिखा, न्यायवार्तिक पर वाचस्पतिमिश्र ने न्यायवार्तिक तात्पर्य टीका लिखी, इस पर उदयनाचार्य ने न्यायवार्तिकतात्पर्यपरिशुद्धि लिखी। तदनन्तर गंगेशोपाध्याय ने एक स्वतन्त्र ग्रन्थ न्यायचिन्तामणि लिखा, चिन्तामणि पर गदाधर भट्टाचार्य आदि बड़े धुरन्धर नैयायिकों ने सविस्तर और दुरूह विचार लिखे। इस प्रकार इस देश में बड़े लम्बे समय तक न्यायविद्या का प्रचार बड़ा प्रबल रहा।

न्याय से काम लेना बच्चा जब जन्मता है, उसी समय देखने सुनने लगता है। यह पहले पहल उस को केवल प्रत्यक्ष ही होता है। पर ज्यों २ प्रत्यक्ष के संस्कार जमते हैं, त्यों २ पिछले अनुभवों को स्मरण कर के ज्ञात से अज्ञात को जानने लगता है। जब वह माता का शब्द सुन कर इधर उधर देखने लगता है, कि उस की माता कहां बोलरही है। उस समय वह ज्ञात से अज्ञात को जानता है, यही न्याय से काम लेना है। बल्कि इस से भी पहले जब वह स्तन को देख कर ही अपने आप मुंह में डालने का यत्न करता है, न्याय से काम लेता है, क्योंकि वह स्तन को देखकर यह अनुभव करता है, कि इस में

से मुझे दूध मिलेगा। और ज्यों २ बड़ा होता है, त्यों २ उस का अनुमान भी बढ़ता जाता है। इस प्रकार पठित अपठित सभी न्याय से काम लेते हैं। न्याय के अनुसार वाद विवाद करना भी अपढ़ गंवारों तक भी पाया जाता है। एक गंवार भी ठीक उसी तरह अपनी बात की पक्ष करता, और दूसरे की बात को काटता है, जिस तरह कोई विद्वान् करता है। भेद केवल इतना ही है, कि गंवार मोटी २ बातें जानता है और उन्हीं में वाद विवाद करता है, पर एक विद्वान् के लिए वे बातें साधारण होती हैं, वह गूढ विषयों में ही वाद विवाद करता है। सर्वथा न्यान से काम अपने २ व्यवहारों में सभी लेते हैं। क्योंकि ज्ञात से अज्ञात के जानने और झूठ सच के नितारने के नियम सब के लिए एक हैं, सब उन्हीं से अपने २ व्यवहारों में काम लेते हैं।

न्यायविद्या की पूर्णता

सो यद्यपि थोड़ा बहुत इन नियमों को सभी जानते और उन से काम लेते हैं। पर इन सारे नियमों का पूर्णज्ञान विना विद्या के नहीं होसकता, इस लिए न्यायविद्या के जानने की आवश्यकता है। क्योंकि शास्त्र द्वारा किसी विद्या का प्रचार पहले ही कोई असाधरण-पुरुष आरम्भ करता है, फिर वह और उसकी शिष्य परम्परा मांझ २ कर उस विद्या को ऐसा पूर्ण और सरल बना देते हैं, कि जो ज्ञान मनुष्य को अपने आप सारी आयु में प्राप्त न हो सकता, वह उन शास्त्रों के द्वारा उसे सहज ही प्राप्त होजाता है। भारत में न्याय की चर्चा बहुत रही है, अतएव न्यायविद्या यहां बड़ी मांझी गई है। और यद्यपि यह कोई प्रतिज्ञा नहीं करसकता, कि न्याय नियमों में से अब कोई अज्ञात रहा ही नहीं, तथापि कई

शताब्दियों से अब किसी ने कोई नया नियम प्रकाशित भी नहीं किया, तो अब हमें ऐसा कहने का अधिकार है, कि भारतवर्ष की न्यायविद्या अधूरी नहीं, पूर्ण है ॥

न्यायविद्या की सीमा } जिन प्रमाणों के सहारे पर हर एक शास्त्र अपने २ विषय का निरूपण करता है, उन प्रमाणों का निरूपण ही न्यायशास्त्र का विषय है। किसी भी प्रमेय का निरूपण न्यायशास्त्र का विषय नहीं। पर उन प्रमाणों को बर्तकर दिखलाए बिना प्रमाणों का ज्ञान भी दृढ़ कैसे होसकता है? इस लिए पुराने आचार्यों ने वैदिक सिद्धान्तों पर बर्तकर दिखलाने के लिए अपने शास्त्र के अन्दर प्रमेय भी रक्खे हैं, और उन पर विचार कर के वैदिक सिद्धान्तों का मण्डन और नास्तिकों का खण्डन किया है। पर वस्तुतः न्यायशास्त्र की सीमा प्रमाणों के निरूपण और वाद विवाद सम्बन्धी बातों के निरूपण तक ही है।

दूसरा न्याय का काम केवल इतना ही है, कि एक निश्चित सचाई से सच्चा परिणाम निकालना सिखा दे। जैसे यह एक निश्चित सचाई है, कि धूम बिना अग्नि के नहीं होता। अब न्याय नियम तुम को सिखलाएगा, कि जहां तुम धूम को देखते हो, वहां यह कह सकते हो, कि यहां अग्नि है। पर यदि तुम ने पहले नियम ठीक नहीं समझा, तो जो भूल तुम से परिणाम निकालने में होगी, उसका न्यायशास्त्र उत्तरदाता नहीं। जैसे तुम यह समझ लो, कि जहां अग्नि होती है, वहां धूम होता है। अब न्यायनियम तुम को बतलाएगा, कि जहां तुम अग्नि देखो, वहां धूम का होना कह सकते हो। अब अन्धेरी रात में तुम ने दूर से आग की चमक देखी, और समझा, वहां धूम है, पर जाकर देखा,

तो पत्थर का कोठा दहक रहा है, धूम रत्ती भर भी नहीं। अब तुम अपनी इस भूल को देखकर न्याय पर दोष लगाओ, तो यह तुम्हारी ही भूल होगी। न्याय तो तुम्हारे निश्चित किये हुए नियम पर आगे परिणाम निकालना सिखलाता है। सो उस नियम के अनुसार वह परिणाम अब भी सच ही है। भूल परिणाम निकालने में नहीं, तुम्हारे नियम बनाने में हुई है। अब नियम ठीक होने पर भी दूसरी भूल वस्तु के देखने में होती है, जैसे जहां धूम होता है, वहां अग्नि होती, यह निमय तो ठीक है। पर तुम ने जाड़े की प्रातःकाल को नदी पर देखी तो धुन्ध, और समझ लिया धूम। अब तुम वहां दौड़ कर अग्नि लेने गए, वहां अग्नि के स्थान पानी मिला, तो यहां भी न्याय का कोई दोष नहीं। न्याय की सीमा यहीं तक है कि यदि यह धूम है, और धूम बिना अग्नि के होता नहीं, तो यहां अग्नि अवश्य है। यदि नियम और वस्तु का यथार्थ ज्ञान होने पर भी न्याय के अनुसार भूल होती, तो न्याय का दोष होता॥

इसी प्रकार न्यायधीश के सामने जो बातें रक्खी जाती हैं, उन से जो ठीक परिणाम निकलना चाहिए, यदि वह वही परिणाम निकाल कर निर्णय देता है, तो उसका निर्णय ठीक है। अब यदि वे बातें, जिन से ऐसा परिणाम निकाला गया है, सत्य हैं, तो परिणाम भी सत्य होगा, और यदि वे बातें असत्य हैं, तो परिणाम भी मिथ्या होगा। पर न्यायधीश का इस में कोई दोष नहीं, उस ने जो कुछ किया है, न्याय की दृष्टि से ठीक किया है, चाहे इस में वस्तुदृष्टि से अन्याय ही हुआ हो। यदि वह इस से उलटा करता, तो चाहे वस्तुदृष्टि से वह न्याय ही होजाता, पर

न्याय की दृष्टि से अन्याय होता। हां यदि वह परिणाम निकालने में भूल करे, वा पक्षपात से निर्णय दे, तो अन्याय माना जायगा। इस प्रकार न्याय को सदा अपनी सीमा के अन्दर रखकर विचार करने से यह जान पड़ेगा, कि न्याय सदा हमें भूल से बचाता है, भूल में डालता कभी नहीं। पदार्थों के निरीक्षण परीक्षण और नियम निर्धारण में जो भूल होती है, उसका उत्तर दाता न्याय नहीं होसकता, हां न्याय अपनी नींव को पक्का करने के लिए यह भी सिखला देता है, कि किस तरह नियम निर्धारण करने चाहियें, और कैसे देखे सुने पर भरोसा करना चाहिये, सर्वथा न्याय सारे व्यवहारों में सीधा मार्ग दिखलाता है, अत एव सब के लिए उपयोगी है। और सर्वोपयोगी बनाने के लिए हमने इस ग्रन्थ में न्याय के विषयों को बड़ा सरल और सुबोध करके लिखा है। और उदाहरण भी सरल ही दिये हैं॥

न्याय-प्रवेशिका।

परिभाषा प्रकरण।

ज्ञान, विषय और व्यवहार।

जानने का नाम **ज्ञान** है, जिसको जानते हैं, वह उस **ज्ञान** का **विषय** कहलाता है, दूसरे को बतलाने का नाम **व्यवहार** है। मैं अपने सामने एक पुस्तक देखता हूं, देखना नेत्र द्वारा जानने को कहते हैं। सो यह देखना एक ज्ञान है, 'पुस्तक' विषय है। अब, जब मैं दूसरे को बतलाता हूं, 'यह पुस्तक है' अथवा 'मैंने पुस्तक देखा है' यह व्यवहार है॥

का ज्ञान हो जाता है, अत एव वह चिड़ियाघर में जाकर शेर और शुतर मुरग को देखकर बिन पूछे कह देता है, कि यह शेर है, यह शुतरमुरग है। जिन शब्दों की शक्ति ज्ञात है, उनके साथ बोला जाने से नए शब्द की शक्ति का ज्ञान हो जाता है, जैसे 'यह आम पर कोइल बोल रही है' इस वाक्य में शेष शब्दों के अर्थों को जानने वाला कोइल शब्द के अर्थ को आप ही जान लेता है। इन उपायों से तो हर एक को शब्द-शक्ति का ज्ञान होता है, पढ़े लिखों के लिए यह और उपाय भी हैं। व्याकरण से, कोष से, व्याख्या से, और कहीं २ वाक्य शेष से भी अर्थ का पता लगता है, जैसे एक वाक्य में मद्र देश का नाम पढ़ कर अर्थ का निश्चय न होने पर भी उससे अगले वाक्यों में मद्र देश के नदी पहाड़ों के नाम पढ़ कर अर्थ का निश्चय हो जाता है। इन सारे उपायों से शब्द शक्ति का पता लगता है, जैसा कि पूर्वाचार्यों ने कहा है:—

शक्तिग्रहं व्याकरणोपमान कोषाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च।
वाक्यस्यशेषाद् विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः॥

वृद्ध कहते हैं, कि शक्ति का ज्ञान व्याकरण, उपमान* कोष, आप्त वाक्य, व्यवहार, वाक्य शेष और व्याख्या से होता है।

शब्द की वृत्तियां — अब यह जानना चाहिये, कि जिस अर्थ में जिस शब्द की शक्ति का ज्ञान हुआ है, वही शब्द कभी २ उससे भिन्न अर्थ भी देता है। जैसे एक सेनापति रण में अपने सैनिकों को प्रोत्साहित करता हुआ कहे, 'मेरे शेरो! शत्रुओं पर टूट पड़ो' यहां शेर का अर्थ वह नहीं, जिस अर्थ में शेर शब्द की शक्ति

---

* मूर्ति भी उपमान के अन्तर्गत है। क्योंकि व्यक्ति के सदृश मूर्ति होती है॥

का ज्ञान हुआ था। यहां शेर शब्द का अर्थ निडर वीर पुरुष है। अब इस अर्थ को शेर शब्द ने किस सम्बन्ध से प्रतीत कराया, क्योंकि शक्ति सम्बन्ध से तो 'शेर' शब्द से पशु विशेष की प्रतीति होती है। इस लिए यह जानना चाहिये, कि शक्ति से अतिरिक्त कोई और सम्बन्ध भी है। सो इस प्रकार जानो:—

शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को **वृत्ति** कहते हैं, वृत्ति चार प्रकार की है, शक्ति, **लक्षणा, गौणी** और **व्यञ्जना** ॥

जिस अर्थ में शब्द का संकेत है, उस अर्थ की प्रतीति शक्ति वृत्ति से होती है। जैसे पुस्तक लेआ, यहां पुस्तक शब्द से पुस्तक पदार्थ की प्रतीति शक्ति से हुई, क्योंकि यहां पुस्तक शब्द का संकेतित अर्थ ही लिया गया है। शक्ति वृत्ति से जिस अर्थ की प्रतीति होती है, उसको **शक्य** अर्थ कहते हैं। अर्थात् पुस्तक शब्द का जो अर्थ यहां है, वह शक्य अर्थ है ॥

लक्षणा—शक्ति से तो शक्य अर्थ की प्रतीति होती है, उस शक्य अर्थ से सम्बन्ध रखने वाले पदार्थ की प्रतीति आगे लक्षणा से होती है। जैसे पुस्तक के गत्ते पर कोई पानी गिराए, तो हम कहते हैं 'मेरा पुस्तक भिगो दिया'। यहां पुस्तक शब्द का शक्य अर्थ नहीं लिया जाएगा, क्योंकि पुस्तक शब्द का शक्य अर्थ गत्तों के अन्दर की पोथी है, गत्ते नहीं। पर उस पुस्तक से सम्बन्ध रखने वाला गत्ता है, इस लिए यहां पुस्तक शब्द से गत्ते की प्रतीति **लक्षणा** से हुई। लक्षणा से जिस अर्थ की प्रतीति होती है, उसको लक्ष्य कहते हैं। जैसे यहां गत्ता पुस्तक का लक्ष्य अर्थ है, लक्षणा के तीन भेद हैं—**जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा, जहदजहल्लक्षणा,** इनके सरल नाम त्याग लक्षणा, भाग लक्षणा और भाग त्याग लक्षणा हो सकते हैं ॥

जहल्लक्षणा वहां होती है, जहां शक्य अर्थ सर्वथा त्याग दिया जाए, जैसे पानी गिरा तो गत्ते पर ही है, अन्दर पुस्तक पर एक भी बूंद पानी की नहीं गई, तो भी कहा यह है, कि 'मेरा पुस्तक भिगो दिया' यहां पुस्तक के शक्य अर्थ को सर्वथा त्याग कर निरा लक्ष्य अर्थ लिया जाता है। इसी प्रकार 'बनारस गंगा पर बसा है' यहां गंगा का शक्य अर्थ जो प्रवाह है, उसको त्याग कर प्रवाह से सम्बन्ध रखने वाले तट की प्रतीति होती है, अर्थात् गंगा के तट पर बसा है॥

अजहल्लक्षणा—जहां शक्य अर्थ का भी अन्वय है, वहां अजहल्लक्षणा होती है, जैसे कोई मालिक नौकर को दही सुपर्द करके कहे 'कौओं से दही को बचाना' अब यहां यदि 'कौओं' शब्द का शक्यार्थ ही लिया जाए, तब तो कौओं के सिवाय और किसी से बचाने का अभिप्राय नहीं निकलेगा, बिल्ली, कुत्ते आदि निःशंक खाजाएं। पर कहने वाले का तात्पर्य ऐसा नहीं, उसका तात्पर्य यह है, कि 'कौए, बिल्ली, कुत्ते आदि सब से बचाना' सो यहां 'कौओं' शब्द का अर्थ दही को खाने वाले सब जीवों से है। जिन में कौए बिल्ली, कुत्ते आदि सब आजाते हैं। पहली लक्षणा में जैसे शक्य अर्थ (प्रवाह) का सर्वथा त्याग करके केवल लक्ष्य अर्थ (तट) ही लिया था, वैसे यहां नहीं, यहां शक्य अर्थ कौए भी छोड़ा नहीं गया, इसलिए इस को अजहल्लक्षणा कहते हैं॥

यदि सड़क पर कुछ पुरुष मिल कर चल रहे हों, जिन में से एक ने छाता लगाया हुआ हो, तो उसी सड़क पर जाने वाले यात्री को हम दूर से यूं मार्ग बतलाएंगे 'देखो वह जहां छाते वाले जारहे हैं, वह सड़क है' यहां एक साथ चलने वाले

इन सब से अभिप्राय है, यहां भी अजहल्लक्षणा से छाते वाला जो शक्य अर्थ है, वह भी और उसके साथी भी सब आगए॥

जहदजहल्लक्षणा—वहां होती है, जहां पूरा शक्य अर्थ न लेकर उसका एक अंश लिया जाता है, जैसे अञ्चल के जलने पर भी कहते हैं, 'मेरी चादर जल गई' और एक ही पत्रे का थोड़ा सा अंश फटने पर भी कहते हैं, 'मेरी पुस्तक फट गई' यहां शक्य अर्थ सर्वथा त्यागा भी नहीं, और पूरा लिया भी नहीं॥

गौणी—गौणी वृत्ति वहां होती है, जहां किसी प्रसिद्ध गुण वाले का नाम दूसरे में उस गुण के दिखलाने के लिए बोला जाता है। जैसे नामी पहलवान् के लिए भीम, दानी के लिए कर्ण, निडर वीर के लिए शेर, निपट मूढ के लिए गधा, सुख शान्ति के राज्य के लिए रामराज्य शब्द बोले जाते हैं। नामी पहलवान् भीम का शक्य अर्थ नहीं, लक्ष्य भी नहीं हो सकता, क्योंकि कि भीम का शक्य अर्थ जो युधिष्ठिर का छोटा भाई है, उसके साथ नामी पहलवान् का ऐसा सम्बन्ध भी नहीं, जैसा गंगा आदि का तट आदि से था, यहां भीम का सा अतुल बल दिखलाने के लिए भीम शब्द बोला गया है, अत एव यह अर्थ जिस वृत्ति से प्रतीत होता है, वह शक्ति और लक्षणा से भिन्न **तीसरी गौणी** वृत्ति है। गौणी वृत्ति से जो अर्थ प्रतीत होता है, उसे गौण अर्थ कहते हैं॥

व्यञ्जना—जब सीधे शब्दों में न कह कर ढंग से बात सुझाई जाती है, तो वहां उस अर्थ की प्रतीति व्यञ्जना से होती है। जैसे विद्यार्थी का अपने अध्यापक से यह कहना 'मास्टरजी चार बज गए' इस बात के सुझाने के लिए है, 'छुट्टी दीजिये'

यह अर्थ व्यञ्जना से प्रतीत होता है। इसी तरह किसी प्रशंसनीय की प्रशंसा के प्रसंग में 'दूर के ढोल सुहावने' कहना यह अर्थ देता है, कि 'तुम भूले हुए हो, वस्तुतः वह प्रशंसनीय नहीं है' यह अर्थ व्यञ्जना से प्रतीत होता है। व्यञ्जना से प्रतीत होने वाले अर्थ को व्यंग्य अर्थ कहते हैं, और शब्द वा वाक्य को व्यञ्जक कहते हैं। उपहास और कटाक्षों में प्रायः व्यञ्जक शब्दों का प्रयोग होता है* ॥

इन चार प्रकार के अर्थों में से प्रायः शक्य को लेकर ही हमारे व्यवहार होते हैं, पर कहीं २ लक्ष्य, गौण और व्यंग्य अर्थ भी लिये जाते हैं, क्योंकि अर्थ का यह नियम है 'यत्परः शब्दः स शब्दार्थः' जिस तात्पर्य से शब्द बोला गया है, वही उसका अर्थ है। 'कौओं से दही बचाना' यहां कौए शब्द दही खाजाने वाले प्राणियों के तात्पर्य से बोला गया है, इसलिए इसका वही अर्थ है, और गधा जहां मूर्ख के तात्पर्य से बोला गया है, वहां उसका वही अर्थ है। 'चार बजे हैं' पढ़ाई बन्द करने के अभिप्राय से बोला गया है, इसलिए वही अर्थ है ॥

पर यह स्मरण रखना चाहिये, कि लक्षणा, गौणी और व्यञ्जना से अर्थ की प्रतीति पुराने व्यवहार के अनुसार ही होती है, निडरवीर के लिए शेर शब्द का व्यवहार पहले होता आता है, तभी हम इस अर्थ में यह शब्द बोलते हैं, यदि पुराना व्यवहार न होता, तो सुनने वाला हमारे तात्पर्य को कैसे जानता इसलिए इस अभिप्राय से किसी को कोई शेर नहीं कह सकता,

* इन चार प्रकार की वृत्तियों में कई गौणी को अलग न मान कर तीन ही वृत्तियां मानते हैं, कई व्यञ्जना को भी अलग न मान कर शक्ति और लक्षणा दो ही मानते हैं ॥

कि वह सिवाय मांस के खाता ही कुछ नहीं, क्योंकि पहले से ऐसे अभिप्राय में व्यवहार नहीं, इसलिए सुनने वाला इस अर्थ को कभी नहीं समझेगा ॥

यह विस्तार से शब्द, वृत्ति और अर्थ के चार२ भेद दिखला दिये हैं, संक्षेप से दो ही भेद हैं। मुख्य और गौण। संकेतित अर्थ मुख्य अर्थ कहलाता है, दूसरे सारे गौण अर्थ कहलाते है। 'गंगा' शब्द का प्रवाहविशेष मुख्य अर्थ है, गंगातट गौण अर्थ। 'कौए' शब्द का 'कौआ' पदार्थ मुख्य अर्थ है, दही को बिगाड़ने वाले सारे प्राणी गौण। चादर का समग्र वस्त्रविशेष मुख्य अर्थ है, अञ्चल गौण। शेर का पशु विशेष मुख्य अर्थ है, निडरवीर पुरुष गौण। 'चार बज गए' का मुख्य अर्थ 'चार बज गए' ही है, पढ़ाई बन्द करके छुट्टी दीजिये अर्थ गौण है। जब अर्थ मुख्य और गौण दो ही प्रकार के हुए, तो इनके बोधक शब्द मुख्य और गौण दो ही प्रकार के हैं, और वृत्ति भी मुख्या और गौणी दो ही प्रकार की हैं। यही सरल मार्ग है ॥

साधारण—कई शब्द ऐसे भी हैं, जिन के मुख्य अर्थ भी अनेक होते हैं, जैसे धारा पानी की भी होती है, और तलवार की भी होती है, घड़ी पानी भरने की भी होती है, और समय देखने की भी। ऐसे शब्दों को **साधारण** (अर्थात् नानावस्तुओं का एक सांझा नाम) वा अनेकार्थ वा नानार्थ कहते हैं, और जिन का एक ही अर्थ होता है, उनको **असाधारण** वा एकार्थ कहते हैं ॥

पर्याय—जो कई शब्द एक ही अर्थ को दें, उन सबको **पर्याय** कहते हैं, जैसे पुस्तक, पोथी, ग्रन्थ एक ही अर्थ रखते हैं ॥

विरोधी वा विरुद्ध, जिनका अर्थ परस्पर विरुद्ध होता है,

उनको विरोधी वा विरुद्ध कहते हैं। जैसे प्राणी और अप्राणी, धर्म और अधर्म, कृष्ण और श्वेत परस्पर विरुद्ध शब्द हैं॥

शब्दों की और परिभाषाएं 'शब्द' वा 'वाचक' जोड़ देने से बन जाती हैं। जैसे मनुष्य एक जाति है। सो मनुष्य शब्द जाति शब्द वा जाति वाचक शब्द कहलाता है, और रामदत्त एक व्यक्ति है, इसलिए यह व्यक्ति शब्द वा व्यक्ति वाचक कहलाता है। सेना वन इत्यादि गण शब्द वा गण वाचक कहलाते हैं, पिता, पुत्र, भाई इत्यादि शब्द जो किसी सम्बन्ध के बोधक होते हैं, वे सम्बन्धी शब्द कहलाते हैं, विशेषण का बोधक शब्द विशेषण वाचक, विशेष्य का बोधक विशेष्य वाचक। जैसे 'बुद्धिमान् बृहस्पति' बुद्धिमान् विशेषण शब्द और बृहस्पति विशेष्य शब्द है। शब्दों की यही परिभाषाएं न्याय में काम आती हैं॥

विषय सम्बन्धी परिभाषाएं।

धर्म, धर्मी—हम जब किसी वस्तु का अनुभव करते हैं, तो हमारे अनुभव का विषय कई बातें होती हैं। जैसे हमारे सामने एक फूल है, हम उस फूल को देखते हैं, फूल का रंग देखते हैं। वायु के झोंके से डोलता है, तो उसका डोलना देखते हैं। और सूंघते हैं, तो उसका गन्ध प्रतीत होता है, छूते हैं, तो स्पर्श प्रतीत होता है, चखते हैं, तो रस प्रतीत होता है। अब इन सारी प्रतीतियों में एक तो मुख्य वस्तु प्रतीत होती है, जो दूसरी वस्तुओं का आधार होकर प्रतीत होती है, दूसरी वस्तुएं उस में प्रतीत होती हैं। जैसे यहां फूल मुख्य वस्तु है, जो आधार प्रतीत होता है, रस, गन्ध, स्पर्श सब उस फूल में (फूल

के, वा फूल के सहारे पर टिके हुए) मालूम होते हैं। डोलना भी फूल में प्रतीत होता है। इन प्रतीतियों में जो आधाररूप होकर प्रतीत होता है फूल, वह धर्मी और जो उसके सहारे पर स्थित प्रतीत होते हैं, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और क्रिया ये सब उसके धर्म कहलाते हैं। इसी तरह घोड़ा धर्मी, उसका रंग हिन-हिनाना, खाना, दौड़ना उसके धर्म हैं ॥

द्रव्य, गुण, कर्म—इनमें मुख्य वस्तु जो धर्मी है, उसको द्रव्य कहते हैं, जैसे फूल और घोड़ा द्रव्य हैं। जो उनमें धर्म प्रतीत होते हैं, उनमें से जो हिलना, चलना, दौड़ना आदि क्रियाएं हैं, उनको कर्म कहते हैं, दूसरे धर्म अर्थात् रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि को गुण कहते हैं ॥

अर्थ—द्रव्य, गुण, कर्म इन तीनों को अर्थ कहते हैं।

जाति और व्यक्ति—अर्थ सब आपस में अलग २ हैं, 'मेरी गौ' न पर्वत है, न वृक्ष है, न घोड़ा है, न मनुष्य है, वह इन सब से भिन्न है, वह दूसरी गौओं से भी भिन्न है। ऐसे भेद के होते हुए भी हम वस्तुओं में ऐसी समानता भी पाते हैं, जिस से वे सब आपस में तो एक ही प्रकार की प्रतीत होती हैं, और दूसरी वस्तुओं से भिन्न प्रकार की। जैसे सारी गौओं में कोई ऐसी समानता है, जिस से गौएं सब एक प्रकार की प्रतीत होती हैं, और घोड़ों, वृक्षों नदियों आदि से भिन्न प्रकार की प्रतीत होती हैं, ऐसी समानता को **सामान्य** वा **जाति** कहते हैं, इसी तरह मनुष्य, पशु आदि जातियां हैं। हर एक जाति के अन्दर जितने पदार्थ आजाते हैं, उनको उस जाति की **व्यक्ति** वा **विशेष** कहते हैं। जैसे मनुष्य जाति है, रामनाथ इसकी एक व्यक्ति है, विश्वनाथ भी व्यक्ति है ॥

सो मनुष्य जातिवाचक शब्द है, और रामनाथ विश्वनाथ व्यक्ति वाचक। अतएव जब हम मनुष्यमात्र के विषय में कुछ कहना चाहें, तो मनुष्य शब्द कह कर कहेंगे, और जब किसी व्यक्ति के विषय में कुछ कहना चाहें, तो उसका निज नाम लेकर कहेंगे। जातियों से अनुमान में बहुत सहायता मिलती है। जब हम इस निश्चय पर पहुंच जाते हैं, कि पानी ढलवान् की ओर जाता है, तो नहर ऊंचे से निचाई की ओर निकालते हैं, और छत्त को प्रणाले की ओर ढलवान बनाते हैं। इसलिए जातियों के भेदों का जानना आवश्यक है॥

जातियों के भेद } मनुष्य की बुद्धि वस्तुओं के परखने में इतना दूर तक पहुंचती है, कि यदि वह वस्तुओं की समानता जांचने लगता है, तो समानता में भी गहरे से गहरा चला जाता है, जैसे सब गौओं में एक प्रकार की समानता देख कर उन सब को एक जाति मान कर 'गौ' एक नाम रक्खा। इसी प्रकार घोड़ा, भैंस, भेड़, बकरी, भेडिया, शेर इत्यादि अलग२ जातियां नियत कीं। फिर इन सब जातियों में एक और प्रकार की समानता देखकर इन सब जातियों की व्यापक एक और जाति मानकर उस जाति का नाम पशु रक्खा। इसी प्रकार समानता देख २ कर 'कौआ' चील, तोता इत्यादि जातियां नियत कीं, फिर इन सब में एक और प्रकार की समानता देख कर इन जातियों की व्यापक एक पक्षी जाति नियत की। इसी प्रकार कीड़े, पतंगे आदि जातियां मानीं। अब इन सब व्यापक जातियों में भी एक और प्रकार की समानता देखकर इनके ऊपर एक और व्यापक 'प्राणी' जाति मानी। यहां तक इस समानता को दूर तक पहुंचाया, कि समस्त वस्तुओं को 'सत्' इस एक

नाम में इकट्ठा कर लिया। अब दूसरी ओर मनुष्य की बुद्धि विशेषता में यहां तक पहुंचती है, कि एक ही जाति की एक व्यक्ति की जो दूसरी व्यक्ति से विशेषता है, उसको भी पहचानने लगता है, और व्यवहार के लिए अलग२ नाम भी रख लेता है। पर ये व्यक्तियां तो आपस में ऐसी भिन्न होती हैं, कि उनमें से एक का जानना दूसरी के जानने में कोई लाभ नहीं देता, हां जातियों का ज्ञान न्याय में बड़ा उपयोगी है, इसलिए उसके भेद जानना आवश्यक है॥

जातियों के मुख्य दो भेद हैं, परा और अपरा। बड़ी जाति को परा कहते हैं, छोटी को अपरा। जैसे पशु परा जाति है, गौ, घोड़े आदि अपरा हैं॥

अपरा जाति की जितनी व्यक्तियां होती हैं, परा जाति की वह भी सभी होती हैं, और उन से बढ़ कर भी होती हैं। जैसे गौ जाति में जितनी व्यक्तियां हैं, पशु जाति में वे भी सारी हैं, और उन से अधिक (सब घोड़े सब ऊंट इत्यादि) भी हैं॥

जो जाति एक की अपेक्षा से छोटी और दूसरी की अपेक्षा से बड़ी हो, उसको परापरा कहते हैं। जैसे पशु जाति प्राणी की अपेक्षा छोटी और गौ की अपेक्षा बड़ी है, इसलिए पशु जाति परापरा जाति है। यह सापेक्ष परापरभाव ऊपर की ओर बहुत दूर तक चला जाता है, जैसे प्राणी जाति पशु जाति से बड़ी और द्रव्य जाति से छोटी है। प्राणी भी द्रव्य हैं और पहाड़ नदियां आदि भी द्रव्य हैं, इस दृष्टि से प्राणी जाति भी परापरा है। और ऊपर देखने से द्रव्य जाति भी परापरा है, क्योंकि यह सत् जाति की अपेक्षा छोटी है, द्रव्य भी सत् हैं, गुण भी सत् हैं, और कर्म भी सत् हैं॥

हां सत् जाति के ऊपर कोई और जाति नहीं, इसलिए सत् जाति को नित्यपरा कहते हैं। अब नीचे की ओर इसी तरह जो सब से निचली जाति है, वह नित्यापरा कहलाती है। जैसे गौ अथवा गौओं में भी आगे जाति भेद मानो, तो कपिला गौ ॥

सो इस प्रकार परा, अपरा और परापरा, अथवा नित्यपरा, नित्यापरा और परापरा ये तीन भेद जाति के हुए। यह भेद आपस में उन्हीं जातियों के कहे जाते हैं, जो जातियां आपस में व्याप्य व्यापक होती हैं, जैसे गौ जाति पशु जाति की व्याप्य है, और पशु जाति गौ जाति की व्यापक है, सो गौ जाति पशु जाति की अपेक्षा से अपरा है, और पशु जाति गौ जाति की अपेक्षा से परा है। पर वृक्ष जाति की अपेक्षा से गौ जाति न परा है, न अपरा है। ऐसी जातियों को विलक्षण जातियां वा विजातियां कहते हैं ॥

जो जातियां आपस में विलक्षण हों, पर किसी एक ही परा जाति की अपरा जातियां हों, उनको आपस में समापर जातियां कहते हैं, जैसे गौ, घोड़ा, भेड़, बकरी, हाथी, शेर, कुत्ता सब एक ही पशु जाति की अपर जातियां हैं, इसलिए ये समापर जातियां कहलाती हैं ॥

जातियां जैसे द्रव्यों की होती हैं, वैसे गुणों और कर्मों की भी होती है, गुणों की जातियां, जैसे रूप जाति, रसजाति इत्यादि पर जातियां हैं। श्वेतरूप, कृष्णरूप, मधुर रस, कटु रस इत्यादि अपर जातियां हैं। कर्म जाति की अपर जातियां चलना, दौड़ना, सुकेड़ना, फैलाना इत्यादि हैं ॥

जाति बतलाने के लिए जाति वाचक शब्द के आगे प्रायः 'पन' लगाया जाता है। जैसे मनुष्यपन, पशुपन। संस्कृत में

प्रायः 'त्व' लगाया जाता है, जैसे 'मनुष्यत्व' पशुत्व, द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व। कहीं 'ता' भी लगाया जाता है। जैसे 'सत्' से सत्ता॥

समुदाय और समुदायी—जाति से समुदाय लिया जाता है, जैसे पशु कहने से चार पाओं वाले प्राणियों का समुदाय लिया जाता है, मनुष्य कहने से दो पाओं वाले प्राणियों का। जाति से जो समुदाय की प्रतीति होती है, वह कहीं साक्षात् सम्बन्ध से होती है, कहीं परम्परा सम्बन्ध से भी होती है। साक्षात् सम्बन्ध से, जैसे चार पाओं वाले प्राणियों का समुदाय पशु कहलाता है। परम्परा सम्बन्ध से, जैसे काले रंग वालों का समुदाय 'काले' कहलाता है। कालों की कोई एक जाति नहीं, एक मनुष्य काला है, एक कौआ काला है, एक तवा काला है, सिर के बाल काले हैं, और दवात की स्याही काली है। यहां स्याही का कौए से और कौए का मनुष्य से कोई मेल नहीं, तथापि इनका एक समुदाय बन जाता है, जिस को 'काले' कहते हैं। इस समुदाय के बनाने में जाति का साक्षात् सम्बन्ध तो नहीं, पर परम्परा सम्बन्ध यहां भी है, यहां काले रंग की तो एक जाति है, उस जाति से सारे काले रंगों का बोध साक्षात् जाति सम्बन्ध से है, आगे उस रंग वालों का बोध रंग के सम्बन्ध से है। इसी प्रकार बहने वालों का समुदाय 'बहने वाले' कहलाता है। इस समुदाय में पानी, तेल, पिघला हुआ घी, पिघली हुई धातें, सब आजाती हैं। यहां भी बहने वालों की तो कोई एक जाति नहीं, पर 'बहना' कर्म की तो एक जाति है, उस जाति के सारे

कर्मों को बहना कहते हैं, उस कर्म वालों का समुदाय बहने वाले हुआ। इस प्रकार समुदाय एक जाति के सम्बन्ध से, वा एक जाति वाले गुण के सम्बन्ध से, वा एक जाति वाले कर्म के सम्बन्ध से बनते हैं। एक समुदाय में जितने अर्थ आ-जाते हैं, उन सब को समुदायी कहते हैं। मनुष्य समुदाय है, अलग २ दृष्टि से एक २ मनुष्य वा दस पांच इकट्ठे भी समुदायी हैं ॥

जैसे द्रव्य, गुण, कर्म की अपनी अलग सत्ता है, वैसे सामान्य वा जाति की कोई अलग सत्ता नहीं होती, सामान्य वृक्ष ढूंढना चाहो, तो कहीं नहीं मिलेगा, सब वृक्ष विशेष ही मिलेंगे, कोई आम, कोई अनार, कोई सेब। सो ऐसे पदार्थों को जिन की अलग सत्ता नहीं होती, पर हमारा व्यवहार उनके माने बिना नहीं चलता, इनको पदार्थ कहते हैं, अर्थ नहीं। क्योंकि बाहर अर्थरूप से दिखलाई न देते हुए भी किसी पद का अर्थ अवश्य हैं, जैसे 'गौ, भैंस, बकरी' इत्यादि अर्थों के लिए कोई पद बोलते हैं, इसी प्रकार इनके लिए भी पद बोलते हैं। सो पदार्थ तो सब को कह सकते हैं, द्रव्य, गुण, कर्म को भी पदार्थ कह सकते हैं, और जाति को भी पदार्थ कह सकते हैं। पर अर्थ द्रव्य, गुण, कर्म को ही कह सकते हैं, जाति को नहीं, क्योंकि जाति की कोई अलग सत्ता नहीं ॥

सम्बन्ध–सम्बन्ध कई प्रकार के हैं, पर न्याय में प्रायः दो ही सम्बन्धों से काम पड़ता है, एक **संयोग**, दूसरा **समवाय** जब अनेक द्रव्य आपस में मिलें, तो उनके सम्बन्ध को संयोग सम्बन्ध कहते हैं। जैसे अनेक पुस्तक (दो वा दो से अधिक) एक दूसरे के साथ इकट्ठे मिलाकर वा एक दूसरे के ऊपर इकट्ठे

रक्खें, तो उनका परस्पर संयोग सम्बन्ध होगा। पर गुण और कर्मों का जो द्रव्य से सम्बन्ध है, उसको **समवाय** कहते हैं। जैसे लाल घोड़ा, यहां लाली और घोड़े का सम्बन्ध समवाय है, और दौड़ता हुआ घोड़ा, यहां दौड़ का और घोड़े का सम्बन्ध समवाय है। संयोग और समवाय में भेद यह है, कि संयोग सम्बन्ध वाले अर्थ एक दूसरे का सहारा छोड़ कर अलग २ हो जाते हैं, जैसे पुस्तक अलग हो सकते हैं। पर समवाय सम्बन्ध वालों में से एक सम्बन्धी दूसरे सम्बन्धी के सहारे ही रहता है, उससे अलग हो सकता ही नहीं। जैसे घोड़े का रंग सदा घोड़े के सहारे ही रहता है, पुस्तकों की नाई कभी ऐसा अलग नहीं हो सकता, कि इधर घोड़ा खड़ा हो जाए, और उधर रंग खड़ा हो जाए। इसी तरह घोड़े की दौड़ भी कभी घोड़े से अलग नहीं हो सकती। ऐसा ही सम्बन्ध अवयवों का अवयवी से होता है, जैसे बहुत से तन्तुओं के संयोग से वस्त्र बना है। यहां तन्तु अवयव हैं, और वस्त्र अवयवी है। तन्तुओं का तो आपस में संयोग सम्बन्ध है, पर तन्तुओं का वस्त्र से समवाय सम्बन्ध है। क्योंकि तन्तु आपस में अलग हो सकते हैं, वस्त्र तन्तुओं से अलग नहीं हो सकता। इसी प्रकार जाति का जाति वालों से समवाय सम्बन्ध माना जाता है॥

साधारण धर्म और **असाधारण धर्म**—जो किसी एक समुदाय का दूसरे समुदाय वा समुदायों के साथ सांझा धर्म होता है, उसे साधारण धर्म कहते हैं। जैसे जुगाली करना 'गौओं का भैंसों' आदि के साथ सांझा धर्म है, इसलिए यह जुगाली करने वाले सभी पशुओं का साधारण धर्म कहलाएगा। जो किसी समुदाय का दूसरे समुदायों से अलग धर्म होता है,

उसको असाधारण धर्म कहते हैं, जैसे सास्ना वाला होना वा बांबां शब्द करना गौ के असाधारण धर्म हैं, सास्ना (गले में कम्बल की तरह लटकता हुआ मांस) गौ के ही होती है, और किसी पशु के नहीं होती, और बांबां शब्द भी गौ ही करती है, और कोई पशु नहीं। सो ये दोनों गौ के असाधारण धर्म हैं। असाधारण धर्म दो प्रकार के होते हैं, एक समनियत दूसरे असम नियत। समनियत वह होते हैं, जो उस समुदाय की हर एक व्यक्ति में सदा पाए जाएं, और असमनियत वह होते हैं, जो किसी में पाए जाएं, और किसी में न पाए जाएं, वा कभी पाए जाएं, और कभी न पाए जाएं। जैसे सास्ना तो सारी गौओं में सर्वदा पाई जाती है, और बांबां शब्द गौएं सदा नहीं करतीं, और ऐसा भी होता है, कि एक बार भी ऐसा शब्द किये बिना ही कोई बछिया मर भी जाती है॥

लक्षण—लक्षण से तात्पर्य होता है, किसी पदार्थ का ऐसा विशेष धर्म बतलाना, जिस से उसके पहचानने में भूल न हो। जैसे द्रव्य उसको कहते हैं, जो गुणों वाला हो, अब हम द्रव्यों के पहचानने में भूल नहीं कर सकते, जिस २ को हम गुणों वाला देखेंगे, उस २ को द्रव्य समझेंगे। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, गुण है। फूल में रूप, रस, गन्ध, स्पर्श है, फूल द्रव्य है। वृक्ष में भी है, वृक्ष द्रव्य है। पानी में रूप है, रस है, स्पर्श है, सो पानी द्रव्य है। अग्नि में रूप है, स्पर्श है, सो अग्नि द्रव्य है। वायु में रूप हैं, वायु द्रव्य है॥

शुद्ध लक्षण—शुद्ध लक्षण वह है, जिस में ये तीन दोष न पाए जाएं। **अव्याप्ति, अतिव्याप्ति** और **असम्भव**। क्योंकि लक्षण में पहला नियम यह होना चाहिये, कि वह लक्ष्य में

पाया जाए, नहीं तो लक्षण बनेगा ही नहीं । 'लक्षण का किसी भी लक्ष्य में न पाया जाना' यह असम्भव दोष है, जैसे कोई वायु का यह लक्षण करे, कि जो रूप वाला द्रव्य है, वह वायु है, यह लक्षण दोष वाला होगा, क्योंकि यहां लक्षण में असम्भव दोष पाया जाता है, कोई भी तो वायु ऐसा नहीं, जिस में रूप हो ॥

अब पहला नियम पूरा हो जाने पर भी अर्थात् लक्षण के लक्ष्य में घट जाने पर भी, यह दूसरा नियम है, कि वह सारे लक्ष्यों में घटे, किसी से हटे नहीं । किसी लक्ष्य में न घटेगा, तो पूरा लक्षण नहीं बनेगा । जैसे वायु वह है, जो समुद्र से भाप को उठा लाकर पर्वतों पर पानी बरसाता है, यह लक्षण यद्यपि वायु में घटता है, तथापि सारे वायुओं में नहीं घटता । जो वायु समुद्र से पानी उठा कर नहीं लाया, अथवा लाकर भी पर्वतों पर नहीं, कहीं अन्यत्र बरसा गया है, वह भी तो वायु ही है। इस प्रकार लक्षण का कई लक्ष्यों में न वर्तना अव्याप्ति दोष है, इन दोनों नियमों के पूरा होने पर भी अर्थात् लक्षण लक्ष्य में पाया जाए, और पाया भी सारे ही लक्ष्यों में जाए, तौ भी तीसरा नियम उसमें यह होना चाहिये, कि वह अपने लक्ष्य से आगे न बढ़ जाए । जैसे कोई वायु का यह लक्षण करे, कि जो स्पर्श वाला द्रव्य है, वह वायु है, यहां यद्यपि पहले दो नियम तो पूरे हैं। स्पर्श वायु में पाया भी जाता है, और पाया भी सारे ही वायुओं में जाता है, तथापि यह लक्षण अपने लक्ष्य से आगे भी बढ़ जाता है। स्पर्श वाला वायु निःसंदेह है, पर पृथिवी, जल, तेज भी तो स्पर्श वाले हैं, और वे इस लक्षण का लक्ष्य नहीं, पर लक्षण उन पर भी जा घटा है, इस प्रकार लक्ष्यों पर घट कर अलक्ष्यों पर भी जा घटना अतिव्याप्ति दोष है, लक्षण इस दोष से भी शून्य होना

चाहिये। इन तीनों दोषों से शून्य ही लक्षण शुद्ध लक्षण कहलाता है। जैसे वायु का यह लक्षण 'जो रूप से हीन, स्पर्श वाला द्रव्य है, वह वायु है। यहां असम्भव दोष नहीं, क्योंकि वायु रूप से हीन स्पर्श वाला है। अव्याप्ति भी नहीं, क्योंकि सारे ही वायु रूप से हीन, और स्पर्श वाले हैं, अतिव्याप्ति भी नहीं, क्योंकि वायु से अतिरिक्त और कोई द्रव्य ऐसा नहीं, जो रूप हीन होकर स्पर्श वाला हो। पृथिवी, जल, तेज, स्पर्श वाले हैं, पर वे रूपहीन नहीं। मन रूपहीन है, पर वह स्पर्श से भी हीन है। सो यह लक्षण वायु में पूरा घटता है, और सिवाय वायु के किसी और पर घटता नहीं, इसलिए यह तीनों दोषों से शून्य शुद्ध लक्षण है॥

पूर्व जो साधारण और असाधारण धर्म बतलाए हैं, उन में से साधारण धर्म लक्षण नहीं बन सकता, क्योंकि उसमें अतिव्याप्ति दोष आजाता है। जैसे स्पर्श वाला होना वायु का पृथिवी जल अग्नि के साथ सांझा धर्म है, इसको लक्षण बनाने में अतिव्याप्ति आजाती है, सो असाधारण धर्म ही लक्षण बनेगा, क्योंकि उसमें अतिव्याप्ति नहीं आती। असाधारण धर्म भी जो समनियत है, वही लक्षण बनेगा, असमनियत नहीं, क्योंकि वह सारे लक्ष्यों पर नहीं घटता, इसलिए उसमें अव्याप्ति आजाती है। पर यह याद रखना चाहिये, कि कोई प्रसिद्ध असाधारण धर्म असमनियत भी हो, तो उसको भी लक्षण मान लिया जाता है, जैसे मनुष्य वह है, जो भाषा बोलता है, वा मनुष्य वह है, जो सीधा खड़ा होकर चलता है। यहां यद्यपि मनुष्य हर समय भाषा नहीं बोलता, न ही हर समय चलता रहता है, और छोटे

बच्चे भी न तो भाषा बोलते हैं, न ही खड़े होकर चलते हैं, तौ भी ये विशेषताएं मनुष्य में ही हैं, और हैं भी प्रसिद्ध, इस लिए ऐसे धर्मों से लक्षण किया जाता है। जब ऐसा लक्षण करते हैं, तो उस लक्षण का अभिप्राय योग्यता से होता है, अर्थात् मनुष्य वह है, जो भाषा बोलने वा सीधा खड़ा होकर चलने की योग्यता रखता है। यह योग्यता मनुष्य में उस समय भी है, जब वह नहीं बोल रहा, वा नहीं चल रहा, और बच्चे में भी पाई जाती है, क्योंकि समय आने पर वह ऐसा कर लेगा। मनुष्य के सिवाय और किसी में नहीं पाई जाती। रीछ और बन्दर भी पूरे सीधे नहीं खड़े होते,और तोते तथा मैना निरे रटे हुए ही शब्द बोलते हैं, भाषा के तौर पर नहीं, अत एव वे हमारे तुल्य उन शब्दों से नए वाक्य नहीं बनाते, और न ही उड़जाकर दूसरे तोतों, मैनाओं को भाषा सिखाते हैं॥

कार्य और कारण—जो वस्तु नई उत्पन्न होती है, उसे **कार्य** कहते हैं,और कार्य के उत्पन्न करने वाले को कारण। जैसे वस्त्र कार्य है, वस्त्र को उत्पन्न करने वाले सब उसके कारण हैं। वस्त्र तन्तुओं से बनता है, इसलिए तन्तुएं कारण हैं, जुलाहा वस्त्र को बुनता है, इसलिए वह भी कारण है, कंघी और नालियों के विना जुलाहा भी नहीं बुन सकता, इसलिए वे भी कारण हैं॥

कारण के भेद — कारण तीन प्रकार का है—**समवायि, असमवायि, निमित्त**—इनका भेद जानने के लिए वस्त्र की उत्पत्ति पर दृष्टि डालो,कि तन्तुएं,कंघी,नालियां और जुलाहे ने वस्त्र के बनाने में क्या २ काम किया है। तन्तुओं ने तो वस्त्र का रूप धारण किया है, वे आप वस्त्र बन गई हैं, मानों

वस्त्र एक देह है, और तन्तुएं उसके अंग हैं। जैसे अंग सारे मिल कर देह है, देह अंगों से अलग नहीं, इसी प्रकार तन्तु सारे मिल कर वस्त्र है, वस्त्र तन्तुओं से अलग नहीं। सो कार्य द्रव्य के ऐसे कारण को, जिसने आप कार्य का रूप धारण किया है, समवायि कारण कहते हैं। इस दृष्टि से जितने कार्य द्रव्य हैं, उनके अवयव ही उनके समवायि कारण होते हैं। जैसे घड़ी का समवायि कारण घड़ी के पुर्जे, घड़े का समवायि कारण मट्टी, दही का समवायि कारण दूध, और बर्फ का समवायि कारण पानी है॥

अब इस बात को जानना चाहिये, कि तन्तुओं से वस्त्र तभी बनता है, जब उनका परस्पर संयोग एक ऐसे विशेष ढंग पर हो जाता है, जिस से वे सब मिल कर एक बन जाती हैं, ऐसा संयोग होने पर ही तन्तुओं से वस्त्र बनता है, इसके बिना नहीं, इसलिए ऐसा संयोगविशेष भी वस्त्र का कारण है। इस कारण को असमवायिकारण कहते हैं। सर्वत्र द्रव्य की उत्पत्ति में अवयवों का संयोग असमवायिकारण होता है, गच्च के द्वारा ईंटों का संयोग विशेष होने से दीवार बनती है, घड़ी के पुर्ज़ों का संयोग विशेष होने से घड़ी बनती है॥

वस्त्र के बनने में तो इतनी ही आवश्यकता है, कि तन्तुएं हों, और उनका एक विशेष ढंग से संयोग हो जाए, पर संयोग स्वतः सिद्ध नहीं, वह भी तो किसी के कराने से होगा, इस आवश्यकता को पूरा करने वाले सब निमित्त कारण कहलाते हैं। तन्तुओं को उस ढंग से संयुक्त करने में जुलाहे ने काम किया है, और उसने कंघी और नालियों के साथ काम किया है, सो जुलाहा, कंघी और नालियां निमित्त कारण हैं।

निमित्त कारण एक होता है, वा अनेक, इसका नियम नहीं, किन्तु जिस ढंग से संयोग होने पर जो कार्य उत्पन्न हो सकता है, उस ढंग से संयोग करा देना निमित्त कारण का काम है, सो इस काम को निबाहने में जितने हों एक वा अनेक, चेतन वा अचेतन, वे सब निमित्त कारण कहे जाते हैं ॥

कारण सामग्री } यह तीनों कारण मिले हुए कारण सामग्री कहलाते हैं। कारण कार्य के नियम ये हैं:—

(१) यह नियत नहीं, कि कारण हो, तो कार्य भी अवश्य हो ॥ जैसे तन्तुएं हैं, पर यह आवश्यक नहीं, कि उन से वस्त्र बने ही। इसलिए हम तन्तुओं को देख कर यह नहीं कह सकते, कि अवश्यमेव इनसे वस्त्र बनेगा ॥

(२) पर यह नियत है, कि कारणसामग्री मिल जाए, तो कार्य अवश्यमेव होता है ॥

जैसे तन्तु, तन्तुओं का संयोग, और संयोग कराने वाले सब हों, तो अवश्यमेव वस्त्र बनेगा, इसलिए कारण सामग्री को देख कर हम कह सकते हैं, कि अवश्यमेव इस से अमुक कार्य उत्पन्न होगा। इससे ये दो नियम निकलते हैं:—

(१) कारण के अभाव से कार्य का अभाव होता है।

(२) पर कार्य के अभाव से कारण का अभाव नहीं होता।

कार्य कारण भाव के निश्चायक } जब यह निश्चय हो गया, कि कारण सामग्री के होने पर कार्य अवश्य होता है, और कार्य बिना कारण के होता नहीं, तो अब यह कार्य है, यह कारण है, इसका निश्चय इन दो बातों से होगा, कि उस कारण सामग्री के होने पर वह कार्य अवश्य हो। जैसे तन्तु, जुलाहा, कंघी, नालियां, तन्तु संयोग के होने पर सदा ही वस्त्र उत्पन्न

हो जाएगा। इसको अन्वय सहचार कहते हैं। दूसरी यह, कि वह कार्य उस सामग्री के बिना कभी न हो, जैसे वस्त्र तन्तु, जुलाहे, कंघी, नालियों के बिना कभी नहीं होगा, इसको व्यतिरेक सहचार कहते हैं। जिन में अन्वय और व्यतिरेक का व्यभिचार आजाए, उनमें कार्य कारण भाव नहीं माना जाएगा। जैसे यदि कोई कहे, कि मींह का और आंधी का कार्य कारण भाव है, तो यह नहीं माना जाएगा, क्योंकि आंधी के आने पर सदा मींह नहीं बरसता, यह अन्वय का व्यभिचार है, और मींह बिना आंधी के भी आता है, यह व्यतिरेक का भी व्यभिचार है। इससे ये दो नियम निकलते हैं:—

(१) अन्वय व्यतिरेक का सहचार ज्ञान कार्य कारण भाव का निश्चायक होता है॥

(२) अन्वय व्यतिरेक का व्यभिचार ज्ञान कार्य कारण भाव का बाधक होता है॥

अन्यथा सिद्ध } कार्य के उत्पादन में जो वस्तु कोई भाग नहीं लेती, उसका चाहे अन्वय व्यतिरेक व्यभिचार न भी हो, तौ भी उसे कारण नहीं माना जाता। क्योंकि उसके बिना काम हो जाता है, इसलिए उसको अन्यथासिद्ध कहते हैं। जैसे वस्त्र के उत्पादन में आकाश अन्यथासिद्ध है। यद्यपि वस्त्र की उत्पत्ति के समय आकाश भी विद्यमान होता है, और वस्त्र बिना आकाश के कभी उत्पन्न नहीं होता, तथापि वस्त्र के उत्पादन में आकाश कोई भाग नहीं लेता, इसलिए अन्यथासिद्ध माना जाता है। इसी लिए वस्त्र में जो रूप है, उसकी उत्पत्ति तन्तुओं के रूप से हुई, इसलिए तन्तुओं का रूप तो

वस्त्र के रूप का कारण है। पर तन्तुओं का स्पर्श नहीं, क्योंकि वस्त्र के रूप की उत्पत्ति में तन्तुओं के रूप ने काम किया है, स्पर्श ने नहीं। इसलिए वस्त्र में रूप उत्पन्न करने के लिए तन्तुओं का रूप तो कारण है, स्पर्श अन्यथासिद्ध है, और स्पर्श के उत्पादन में स्पर्श कारण है, रूप अन्यथासिद्ध है। ये व्यवहार और विषय सम्बन्धी परिभाषाएं कहदी हैं, ज्ञान सम्बन्धी परिभाषाएं प्रमाणों के निरूपण में आएंगी॥

२—प्रत्यक्ष प्रकरण।

इन्द्रियों और अर्थों के साक्षात् सम्बन्ध से जो ज्ञान होता है, उसको **प्रत्यक्ष** कहते हैं॥

इन्द्रिय छः हैं—**नेत्र** (आंख) **श्रोत्र** (कान) **घ्राण** (नाक) **रसना** (जीभ) और **त्वचा**। ये पांच **बाह्य इन्द्रिय** हैं, और छटा **मन अन्तरिन्द्रिय** है॥

विषय—इन इन्द्रियों से जिन विषयों का साक्षात् होता है, वे ये हैं। नेत्र से हम सब प्रकार के रूप देखते हैं। श्रोत्र से सब प्रकार के शब्द सुनते हैं। घ्राण से सब प्रकार के गन्ध सूंघते हैं। रसना से सब प्रकार के रस चखते हैं, और त्वचा से सब प्रकार के स्पर्श प्रत्यक्ष करते हैं। ये पांचों प्रकार के ज्ञान बाह्य इन्द्रियों से होते हैं। मन से सुख दुःख का साक्षात् होता है। 'मैं सुखी हूं' यह सुख का अनुभव है, 'मैं दुःखी हूं' यह दुःख का अनुभव है। ज्ञान, इच्छा, द्वेष, और प्रयत्न का भी मन से साक्षात् होता है। जैसे 'यह वृक्ष है' यह वृक्ष का प्रत्यक्ष है, इसी प्रकार 'मैं वृक्ष को देख रहा हूं' यह वृक्ष के

प्रत्यक्ष का प्रत्यक्ष है, अर्थात् ज्ञान का प्रत्यक्ष। इसी प्रकार मैं सुन रहा हूं, सूंघ रहा हूं, सुख अनुभव कर रहा हूं, दुःख अनुभव कर रहा हूं, इत्यादि रूप से ज्ञान का प्रत्यक्ष होता है। अर्थात् वृक्ष का प्रत्यक्ष पहले नेत्र से हुआ, फिर वृक्ष के प्रत्यक्ष का प्रत्यक्ष मन से हुआ। इसी प्रकार मैं खाना चाहता हूं, पीना चाहता हूं, यह इच्छा का अनुभव है। मैं इससे घिन करता हूं, यह द्वेष का अनुभव है। मैं कर रहा हूं, चल रहा हूं, दौड़ रहा हूं, यह प्रयत्न का अनुभव है॥

मानस और ऐन्द्रियक प्रत्यक्ष में विशेषता — मानस प्रत्यक्ष जिन गुणों का होता है, वे अनुभव हुए बिना नहीं रहते। ऐसा नहीं हो सकता, कि सुख वा दुःख उत्पन्न हो, और हम उनको न जानें। ऐसे सुख वा दुःख के होने में कोई प्रमाण नहीं हो सकता, जो जाना न गया हो, क्योंकि सुख दुःख का मन से सीधा सम्बन्ध होने के कारण उत्पन्न होते ही जाने जाएंगे। इसी प्रकार ज्ञान, इच्छा, द्वेष और इच्छा द्वेष से उत्पन्न हुए प्रयत्न भी उत्पन्न होकर अज्ञात नहीं रह सकते। पर बाह्य इन्द्रियों के विषय अज्ञात भी रहते हैं। भूमि के मध्य में विद्यमान पदार्थों का रूप अभी तक नहीं देखा गया, यद्यपि उस रूप में देखा जाने की योग्यता है, यदि वह हमारी आंखों के सामने हो, तो हम उसे अवश्य देखलें। इसके सिवाय यह भी है, कि सारे रूप हमारे प्रत्यक्ष के योग्य भी नहीं, जैसा कि अणुओं के रूप को हम देख सकते ही नहीं। जिन रूपों को हम देख सकते हैं, उनको उद्भूतरूप कहते हैं, जिनको देख सकते ही नहीं, उनको अनुद्भूतरूप कहते हैं। रूप की भान्ति स्पर्श, रस, गन्ध और शब्द भी उद्भूत और अनुद्भूत होते हैं॥

प्रत्यक्ष का विषय — ऊपर हमने लिखा है, कि बाह्य इन्द्रियों से रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श का ज्ञान होता है, पर अब यह विचारणीय है, कि प्रत्यक्ष का विषय क्या इतना ही है, वा और भी है ? है तो किस २ इन्द्रिय का क्या २ विषय है । इसकी व्यवस्था इस प्रकार है, कि नेत्र से हम सब प्रकार के रूप देखते हैं, सब प्रकार के रूप कहने से दो बातें आगई, एक तो रूप, दूसरी रूपों की जातियां, अर्थात् नेत्र से हम रूप देखते हैं, और यह भी, कि यह रूप किस जाति का है, नीला है, पीला है, काला है, अर्थात् रूपों को भी देखते हैं, और रूपों में जो समानता और विशेषता है, उसको भी देखते हैं ॥

पूर्व लिख आए हैं, कि हम उद्भूतरूप ही देख सकते हैं, अनुद्भूत नहीं । अब यह जानना चाहिये, कि नेत्रों से हम केवल उद्भूतरूप ही नहीं देखते, उद्भूतरूप वाले द्रव्यों को भी देखते हैं, हम घोड़े की निरी लाली ही नहीं देखते, बल्कि लाल घोड़ा देखते हैं, पत्तों की निरी हरियाली नहीं देखते, बल्कि हरे पत्ते देखते हैं । इस प्रकार द्रव्यों को भी देखते हैं । और द्रव्यों की जातियों को भी देखते हैं, यह गौ है, यह घोड़ा है, देखकर ही पह-चान लेते हैं । अर्थात् उद्भूतरूप वाले द्रव्य और उनमें जो समानताएं विशेषताएं हैं, उसको भी प्रत्यक्ष देखते हैं । घोड़े और गौ आदि द्रव्य हैं, उनको भी प्रत्यक्ष देखते हैं, और जो इनके परस्पर सामान्य और विशेष धर्म हैं, उनको भी प्रत्यक्ष देखते हैं, गौ की आकृति हम प्रत्यक्ष देखते हैं, जो सारी गौओं की एक समान है घोड़ों के साथ गौओं की जो चौपाए होने में समानता है, उसको भी प्रत्यक्ष देखते हैं । इसी प्रकार उद्भूतरूप वाले किसी भी वस्तु के साथ जो गौ की समानता है, उसको नेत्र से देखते हैं ।

अब विशेषता भी इसी प्रकार प्रत्यक्ष देखते हैं। गौ का जो घोड़े से आकृति का भेद है (यह उसकी विशेषता है) उसको भी प्रत्यक्ष देखते हैं। दूसरी वस्तुओं से जो भेद है, उसको भी प्रत्यक्ष देखते हैं। एक गौ का जो दूसरी गौ से आकृति रंग आदि का भेद है, उसको भी आंख से देखते हैं। इस प्रकार उद्भूतरूप की नाईं उद्भूतरूप वाले सारे द्रव्य, उन द्रव्यों की समानताएं और विशेषताएं हमारे नेत्रों का विषय हैं॥

इनसे अतिरिक्त ये पदार्थ भी नेत्रों का विषय होते हैं। यहां एक घोड़ा है, वा दस घोड़े हैं, इत्यादि संख्या (गिनती), यह दोनों ईंटें आपस में संयुक्त हैं, इत्यादि संयोग, यह दोनों ईंटें अलग २ होगई हैं, इत्यादि विभाग, यह उससे परे है, यह वरे इस प्रकार अन्तराल, यह वस्तु स्निग्ध है, इस प्रकार स्नेह, यह बहने वाली है, इस प्रकार द्रवत्व, यह छोटी है, यह बड़ी है, इस प्रकार परिमाण भी नेत्रों का विषय है। नेत्रों से देखने योग्य वस्तुओं के सम्बन्ध भी नेत्रों का विषय होते हैं। जैसे रूप और द्रव्य का सम्बन्ध। क्रिया भी नेत्रों से देखी जाती है, दौड़ते हुए घोड़े का दौड़ना भी प्रत्यक्ष दीखता है॥

नेत्रों से किसी वस्तु के प्रत्यक्ष करने में ये नियम पाए जाते हैं। एक तो यह कि उस वस्तु पर प्रकाश पड़ रहा हो। रात का समय है, घर में दीपक जल रहा है, घर की सारी वस्तुएं नेत्रों से दीखती हैं। दीपक बुझा दो, कोई वस्तु नहीं दीखेगी, क्योंकि वे प्रकाश में नहीं रहीं। तुम बाहर जाकर प्रकाश में खड़े हो जाओ, और अन्दर अन्धेरा रहने दो, फिर भी अन्दर की कोई वस्तु नहीं दीखेगी, क्योंकि

प्रकाश वस्तुओं पर चाहिये, न कि तुम्हारे ऊपर। अच्छा तुम अन्धेरे में चले जाओ, बाहर की वस्तुओं पर दृष्टि डालो, जो प्रकाश में हैं, सब दीखती हैं, क्योंकि प्रकाश में हैं॥

दूसरा यह कि हमारे नेत्र और द्रष्टव्य वस्तु के मध्य में कोई आड़ न हो। हम से दो फुट के अन्तराल पर हाथी बन्धा है, है भी दिन के प्रकाश में, पर हमारे और उसके मध्य में दीवार है। हम इसे नहीं देखते। अन्धेरे में घड़े के अन्दर दीपक जल रहा है, हम घड़े को नहीं देख सकते, क्योंकि जिस भाग पर प्रकाश पड़ रहा है, वह हमारी आंखों के सामने नहीं, आड़ में है॥

तीसरा यह कि द्रष्टव्य वस्तु अपने देखे जाने की सीमा के अन्दर होनी चाहिये। खुले मैदान में, जहां आंखों के सामने कोई रोक नहीं, वहां भी अति दूर पड़ी वस्तुएं दिखलाई नहीं देतीं, वे ही थोड़ी दूर और आगे बढने से, जब दृष्टि की सीमा में आजाती हैं, तो दीख पड़ती हैं, वा दूरवीक्षण लगा कर जब दृष्टि की सीमा को बढ़ा दिया जाता है, तो दीख पड़ती हैं। यह दृष्टि की सीमा पदार्थ के स्वरूप पर निर्भर रखती है, जितनी स्थूल वस्तु हो उतनी ही उसके दृष्टिगोचर हो सकने की सीमा लम्बी होती है। चंडूल पक्षी आकाश में बहुत ऊंचा उड़ जाता है, पर वह एक मील भी ऊंचा नहीं जाता, कि दृष्टि की सीमा से परे हो जाता है। सूर्य पृथिवी से नौ करोड़ तीस लाख मील की दूरी पर है, तौ भी वह दृष्टि की सीमा के अन्दर है॥

यह याद रखना चाहिये, कि दृष्टि की सीमा कारणान्तरों से घट बढ़ भी जाती है, नंगी आंख से देखने की अपेक्षा दूरवीक्षण से दूर तक देखा जा सकता है, और जितनी उत्तम दूर-

तीक्षण हो, उतना ही अधिक दूर तक देखा जासकता है, दुर्बल नेत्रों वालों को उपनेत्र लगाने से अधिक दूर तक दीखता है। तथा रात को दूर मैदान में एक दीपक जलता हुआ दीखता है, पर यदि उसके निकट आग का एक भांबड़ मच रहा हो, तो नहीं दीखेगा, क्योंकि दूसरे बड़े प्रकाश में उसका छोटा प्रकाश मात पड़ गया है, पर यदि तुम उसके निकट चले जाओ, तो फिर दिखलाई देगा, अर्थात् अब भी वह दृष्टि का अविषय नहीं हुआ,पर उसकी सीमा घट गई है। इसी कारण से दिन को तारे नहीं दीखते, और चांदनी रात की अपेक्षा अन्धेरी रात में अधिक दीखते हैं। इसी प्रकार उजाड़ में एक छोटी सी झाड़ी दूर से दृष्टिगोचर हो जाती है, पर बहुत से वृक्ष उसके निकट हों,तो उतनी दूर से दृष्टिगोचर नहीं होती। यह नेत्र का विषय है॥

अब त्वचा का विषय कहते हैं। उद्‌भूत स्पर्श त्वचा का विषय है, पर त्वचा दूसरे इन्द्रियों की नाईं शरीर के एक देश में ही नहीं, अन्दर बाहर सारे शरीर में व्याप्त है, अत एव हम स्पर्श सारे शरीर से अनुभव कर सकते हैं,और शरीर के अन्दर भी स्पर्श का अनुभव करते हैं, ग्रीष्म में घाम से आकर शीतल जल पीने पर अन्दर उतरते हुए जल का अन्दर शीत स्पर्श अनुभव होता है, इसी तरह अधिक उष्ण दूध वा चाह का उष्ण स्पर्श भी प्रत्यक्ष अनुभव होता है॥

स्पर्श की समानता और विशेषता भी त्वचा से प्रत्यक्ष होती है, अर्थात् नर्मी, कड़ापन, शीतता, उष्णता आदि भी प्रत्यक्ष होते हैं। उद्‌भूत स्पर्श वाले द्रव्य, और उनद्रव्यों की समानताएं विशेषताएं भी त्वचा से प्रत्यक्ष होते हैं। अन्धेरे में स्पर्श से ही हम गौ को भी प्रत्यक्ष जान लेते हैं,और गौ की जो दूसरी

गौओं के साथ समानता और घोड़ों से विशेषता है, उसको भी प्रत्यक्ष जान लेते हैं। नेत्र की नाईं त्वचा से भी द्रव्यों की संख्या, संयोग, विभाग, दूरी, निकटता, स्नेह, द्रवत्व, परिमाण, समवाय और कर्म भी प्रत्यक्ष होते हैं॥

श्रोत्र से शब्द और उसके भेद अर्थात् यह अव्यक्तध्वनि है, वा सार्थक शब्द है, यह कौए का शब्द है, वा चील का शब्द है, यह रसीला स्वर है, वा कटुध्वनि है इत्यादि भेद प्रत्यक्ष होते हैं। श्रोत्र से द्रव्य का प्रत्यक्ष नहीं होता॥

घ्राण से गन्ध और गन्ध के भेद सुगन्ध, दुर्गन्ध, आदि प्रत्यक्ष होते हैं। घ्राण से भी द्रव्य का प्रत्यक्ष नहीं होता॥

रसना से रस और उसके भेद खट्टा मीठा आदि प्रत्यक्ष होते हैं। रसना से भी द्रव्य का प्रत्यक्ष नहीं होता॥

मन से ज्ञान इच्छा द्वेष प्रयत्न और सुख दुःख का अनुभव होता है॥

निर्विकल्प और सविकल्पक प्रत्यक्ष—प्रत्यक्ष दो प्रकार का होता है, एक **निर्विकल्पक** दूसरा **सविकल्पक**। पहले किसी वस्तु का निर्विकल्पक ज्ञान होता है, पीछे सविकल्पक होता है, निर्विकल्पक वस्तुमात्र का ज्ञान होता है, जिसका हम कोई विशेषनाम नहीं रख सकते, जैसे दूर से किसी वस्तु को देख कर पुरुष कहता है, कि वह कुछ है। पीछे जब दृष्टि को जमा कर देखता है, तो कहता है, कि कोई पशु है। यह विशेष ज्ञान सविकल्पक है। और अधिक दृष्टि जमाता है, तो कहता है, कि गौ चर रही है, इत्यादि सब सविकल्पक हैं। इस तरह दूर में तो निर्विकल्पक और सविकल्पक का भेद प्रतीत हो जाता है, पर निकट की वस्तुओं में प्रतीत नहीं होता, हम अपने

पास खडी गौ को देखते हैं, तो यह नहीं जानते, कि हमने गौ जानने से पहले वे सब वस्तुएं देखीं, जिनके सम्बन्ध से हमने इसका गौ नाम रक्खा है। पर है ऐसे ही, क्योंकि ज्ञान की उत्पत्ति का नियम यह है, कि—

जो विशिष्ट ज्ञान होता है, वह विशेषण ज्ञान और विशेष्य ज्ञान के पीछे होता है ॥

जैसे दण्ड और पुरुष को हम पहले अलग२ देख लेंगे, तब यह ज्ञान होगा, कि यह दण्डी पुरुष है, दण्ड और पुरुष को अलग२ देखे बिना दण्ड-वाला ज्ञान पहले ही कैसे हो सके, क्योंकि इसमें दण्ड और पुरुष का सम्बन्ध प्रतीत होता है, दण्ड-वाला। और सम्बन्ध का ज्ञान तब होता है, जब सम्बन्धियों का ज्ञान हो जाए। सो जब दण्ड और पुरुष का अलग २ ज्ञान हो चुकता है, तब दण्ड-वाला यह ज्ञान होता है। यहां 'दण्ड' विशेषण है, 'पुरुष' विशेष्य है। दण्ड का ज्ञान विशेषणज्ञान, और पुरुष का ज्ञान विशेष्य ज्ञान है, उसके पीछे दण्ड-वाला पुरुष यह विशिष्टज्ञान होता है। इसी प्रकार यह गौ है। यह जो प्रतीति है, यह भी विशिष्टज्ञान है, क्योंकि इसमें एक तो सामने स्थित जो व्यक्ति है, उसकी प्रतीति है, और दूसरा उस व्यक्ति की जो गौओं के साथ समानता है, उसकी प्रतीति है, तभी हमने उसे गौ कहा है। सारी गौओं के साथ समानता उसके अंगों, अंगों की बनावट और स्थिति की है। यह पहले भासचुके हैं, तब गौ प्रतीति हुई है। ठीक जैसे दूर से देखने में प्रतीति हुई थी, वैसे ही यहां 'गौ' यह सविकल्पक प्रतीति हुई है, किन्तु हुई इतनी शीघ्र है, कि निर्विकल्पक प्रतीति का पता ही नहीं लगा, कब होगई। पर हुआ पहले निर्विकल्पक अवश्य है, क्योंकि निर्विकल्पक के बिना सविकल्पक हो ही नहीं सकता ॥

अनुभव और स्मृति — जब हम कोई वस्तु देखते हैं, तो **अनुभव** करते हैं, पर जब हम देख चुके हैं, तो फिर उस वस्तु के सामने न होने पर भी जो उसका स्मरण आता है, वह स्मृति है। अर्थात् साक्षात् देखना **अनुभव** है, और निरा स्मरण करना स्मृति है। जैसे आंख से देखना अनुभव है, ऐसे ही कानों से सुनना, घ्राण से सूंघना, त्वचा से छूना, जिह्वा से चखना भी अनुभव है, और सुनी, सूंघी, छुई और चखी वस्तु का स्मरण स्मृति है। मन से सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न और ज्ञान का साक्षात् करना अनुभव है, और साक्षात् जाने का फिर स्मरण करना स्मृति है॥

स्मृति की उत्पत्ति — हम जो अनुभव करते हैं, उसका संस्कार हमारे मन पर पड़ जाता है, वह संस्कार टिका रहता है, उससे फिर स्मृति होती है। इस संस्कार को **भावना** कहते हैं॥

प्रश्न—पहले देखना और फिर स्मरण करना ये दोनों बातें तो अनुभव सिद्ध हैं, बीच में एक भावनाख्य संस्कार मानने की क्या आवश्यकता है?

उत्तर—यदि संस्कार न मानें, तो स्मृति का कारण क्या होगा!

प्रश्न—स्मृति का कारण अनुभव होगा?

उत्तर—अनुभव निःसन्देह कारण है, क्योंकि बिना अनुभव के स्मृति हो नहीं सकती, पर यह भी तो बताओ, कि जिसको देखे कई वर्ष बीत गए हैं, उसका स्मरण अब कैसे करते हो। वह अनुभव तो इस समय तक नहीं चला आता, अब जो स्मृति हुई, उसका कारण वह अनुभव कैसे हुआ? इसलिए यह जानो, कि अनुभव जो हुआ, उसने संस्कार उत्पन्न कर दिया

था.वह संस्कार अब तक बना रहा है,उस संस्कार से यह स्मृति उत्पन्न हुई है । जैसे कोई पुरुष व्याख्यान देता है, वा गाता है, तो उसके व्याख्यान वा गान को तवे पर अंकित कर लेते हैं, फिर जब चाहते हैं, फोनोग्राफ पर उस तवे को चढ़ा कर वह व्याख्यान वा गान ज्यों का त्यों सुन लेते हैं । ठीक इसी तरह जो कुछ हम अनुभव करते हैं, उसके चिन्ह मन पर पड़ जाते हैं, वही संस्कार हैं, उन संस्कारों से फिर वैसा ही ज्ञान बिन देखे उत्पन्न होता है, यही स्मृति है । यदि तवे पर संस्कार न पड़ते, तो फिर हम उस व्याख्यान वा गान को न सुन सकते, इसी तरह यदि मन पर संस्कार न पड़ते, तो फिर हम उस देखी वस्तु को कभी स्मरण न कर सकते ॥

प्रश्न–अच्छा, स्मृति यदि इन संस्कारों से उत्पन्न होती है, तो संस्कार पड़ जाने के पीछे स्मृति होती ही क्यों नहीं रहती ?

उत्तर–इसलिए, कि संस्कार अपने आप ही स्मृति को उत्पन्न नहीं करते, उनको एक सहायक की अपेक्षा होती है, जैसे तवे के संस्कार भी अपने आप शब्द को उत्पन्न नहीं करते, जब तक कोई उनको मशीन पर रख कर मशीन न चलाए ।

प्रश्न–वह सहायक कौन हैं ?

उत्तर–वे सहायक कई हैं, जैसे ध्यान देना, ध्यान देने से भूली हुई बात स्मरण आजाती है । क्रम होना, जिन वस्तुओं में एक दूसरे के पीछे होने का क्रम पाया जाता है, उनमें एक के पीछे दूसरी स्मरण आती जाती है । जैसे गिनती में एक के आगे दो, दो के आगे तीन इत्यादि स्मरण आता जाता है, और श्लोक का पहला पद बोलने से क्रमशः अगले २ पदों का

स्मरण आता जाता है । सबेरे उठकर शौच, दातून, स्नान, सन्ध्या आदि का, जिस क्रम से जो किया करता है, उसी क्रम से उसे एक के पीछे दूसरे का, स्मरण आता जाता है । चिन्ह-मालिक अपनी वस्तुओं पर जो चिन्ह कर देते हैं, उनसे उन वस्तुओं वा उनके मालिकों का स्मरण आजाता है । सो जैसे ये ध्यान, क्रम और चिन्ह, स्मृति के उत्पन्न करने में संस्कार के सहायक हैं, इसी प्रकार और भी कई सहायक हैं, जिन में से मुख्य सहायक सम्बन्ध है । एक सम्बन्धी के जानने से दूसरे का स्मरण होता है । दो साथियों में से एक को देखकर दूसरे का स्मरण होता है, पिता को देखकर पुत्र का, पुत्र को देख कर पिता का, धूप को देखकर अग्नि का स्मरण होता है । ये जितने सहायक हैं, ये सब स्मृति करा देते हैं, इसलिए इनको **स्मारक** कहते हैं, और सोई हुई स्मृति को जगा देते हैं, इसलिए **उद्बोधक** कहते हैं । सो यह जानो, कि अनुभव के अनन्तर मन पर उस अनुभव जो के संस्कार पड़ते हैं, स्मृति उन संस्कारों से ही होती है, पर होती तब है, जब कोई उद्बोधक मिलता है ॥

संस्कारों की दृढ़ता { अभ्यास से संस्कार दृढ़ होते हैं, और जितने संस्कार दृढ़ हों, उतनी ही स्मृति झटपट होती है. इसी लिए किसी बात को याद रखने के लिए उसको बार २ दुहराने की आवश्यकता होती है ॥

स्मृति की महिमा { निर्विकल्पक प्रत्यक्ष के सिवाय ज्ञान के सारे भेद प्रभेद स्मृति पर निर्भर रखते हैं, बच्चे को पहलेपहल वस्तुओं का निर्विकल्पक ज्ञान होता है । वह आंखों से रूप देखता है, पर उसको यह ज्ञात नहीं होता, कि यह रूप किसी वस्तु का है । उसके लिए धर्म धर्मी का कोई भेद नहीं होता,

इसी तरह जो वस्तु उसके शरीर से स्पर्श करती है, उसका भी वह स्पर्शमात्र अनुभव करता है, उसको यह ज्ञात नहीं होता, कि यह स्पर्श किसी वस्तु का है। उसको यह भी विदित नहीं होता, कि जिसको मैंने आंखों से देखा था, उसी का स्पर्श कर रहा हूं। इसी प्रकार सारे इन्द्रियों के विषयों का अनुभव करता है। पर हरएक अनुभव के संस्कार चित्त पर पड़ते जाते हैं। उनसे फिर उन पहले अनुभवों की स्मृति होने लगती है। नया अनुभव और पूर्वकी स्मृति मिला कर पहचान आरम्भ होती है। पहले दिन जो रूप देखा था, दूसरे दिन वही रूप देखने पर पिछले अनुभव की स्मृति होजाने से उसको पहचान लेता है*। इस पहचान के कारण वह एक प्रकार के रूप को दूसरे प्रकार के रूप से भेद जानता है। इसी प्रकार स्पर्श आदि में पहचान उत्पन्न होती है। पहले तो इस प्रकार अलग २ इन्द्रियों के विषयों की अलग २ पहचान होती है, फिर जब आंखों से देखी वस्तु उसके शरीर को आकर लगती है, और बार २ ऐसा होता है, तब उसको रूप और स्पर्श का एक वस्तु में होना प्रतीत होने लगता है, और उसकी पहचान और भी बढ़ जाती है। अन्धेरे में माता के स्पर्शमात्र से उस पहचाने हुए स्पर्श की स्मृति आजाती है, और वह माता को पहचान लेता है, इसी तरह चांदने में निरा देखकर भी पहचान लेता है। पहचान हरएक स्मृति के सहारे पर होती है। पहचान पहले सामान्यसी होती है, फिर धीरे २ हरएक वस्तु की विशेष पहचान होती है। पहले

---

* यह नहीं जानना चाहिये, कि दूसरे ही दिन ही पहचान लेता है, यह कहने का ढंगमात्र है, अभिप्राय यह है, कि पिछले अनुभवों की स्मृति और तत्सदृश नया अनुभव मिलने से ही पहचान होने लगती है॥

हरएक स्त्री बच्चे को माता ही प्रतीत होती है, फिर वह अपनी माता को दूसरी स्त्रियों से अलग करके पहचानने लगता है। सामान्य पहचान सामान्य धर्मों के ज्ञान से और विशेष पहचान विशेष धर्मों के ज्ञान से होती है। पहचान से आगे जल्दी ही बच्चा अनुमान भी करने लगता है, जब माता के शब्दमात्र को सुनकर इधर उधर ताकने लगता है, कि उसकी माता कहां बोल रही है, तब वह अनुमान से काम लेता है। इस अनुमान का सहारा भी स्मृति ही है। पहले जो उसने माता का शब्द बार२ सुन कर पहचान लिया है, वैसे शब्द को सुनकर उसे माता का स्मरण आकर यह अनुमान होता है, कि यहां मेरी माता है। भूल में भी स्मृति ही कारण होती है। किसी दूसरी स्त्री को बच्चा माता इसलिए समझता है, कि माता के समान आकृति देखकर उसे झट माता का स्मरण आजाता है। फिर भूल का पता भी स्मृति ही दिखाती है। उसके चेहरे को देखकर 'यह मेरी माता नहीं है' यह ज्ञान इसलिए होता है, कि माता के चेहरे की स्मृति होती है, और वह दृष्टिविषय का चेहरा स्मृति विषय के चेहरे के तुल्य नहीं होता है। हमें जो भूल होती है, मृगतृष्णा को जल समझ लेते हैं, यह भी जल की स्मृति से होती है। संशय भी स्मृति से होता है, जब बच्चा कई बार माता के समझने में भूल करता है, तो फिर उसे दूर से किसी स्त्री को देखकर संशय होता है, कि यह मेरी माता है, वा कोई और है। यह संशय इसलिए हुआ है, कि कई बार उसका ज्ञान सच्चा निकला है, और कई बार भूल निकली है, अब सच्चे ज्ञान और भूल दोनों की स्मृति हो आने से संशय हो गया है। संशय के पीछे जो निश्चय होता है, वह इस प्रकार होता है, कि पहले संशय

जो सामान्य धर्म के देखने से हुआ था, वह संशय विशेषधर्म के देखने से ही मिट सकता है, इसलिए संशय को मिटाने के लिए पहले विशेषधर्म की स्मृति होती है, फिर उस विशेषधर्म को देख कर निश्चय हो जाता है। शब्द से जो अर्थ की प्रतीति होती है, वह शब्द अर्थ के सम्बन्ध की स्मृति से होती है। इस प्रकार निर्विकल्पक प्रत्यक्ष मुख्य अनुभव है, उसके संस्कारों से स्मृति उत्पन्न होती है, और फिर स्मृति के सहारे पर ज्ञान के अनेक प्रभेद हो जाते हैं, जिनका संक्षिप्त वर्णन यह है—

ज्ञान के दो भेद अनुभव और स्मृति — ज्ञान के दो भेद पूर्व कहे हैं, अनुभव और स्मृति। संस्कारमात्र से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह स्मृति है, दूसरे सभी ज्ञान अनुभव कहलाते हैं॥

अनुभव के दो भेद प्रत्यक्ष और परोक्ष — अनुभव के दो भेद हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष इन्द्रियों से और मन से साक्षात् करना प्रत्यक्ष अनुभव है, जैसे रूप का देखना इत्यादि। अनुमान से वा शब्द के द्वारा जानना परोक्ष अनुभव होता है। अनुमान से जैसे धूम को देखकर अग्नि का ज्ञान, शब्द से जैसे 'आज नदी में बाढ़ आई है' सुन कर बाढ़ का ज्ञान। इनमें से प्रत्यक्ष अनुभव का वर्णन यह हो रहा है। परोक्ष अनुभव का सविस्तर वर्णन आगे आएगा॥

अनुभव के दो भेद यथार्थ और अयथार्थ — पूर्व अनुभव के दो भेद कहे हैं, प्रत्यक्ष और परोक्ष। ये दोनों ही दो २ प्रकार के होते हैं। यथार्थ और अयथार्थ। सच्चा अनुभव चाहे प्रत्यक्ष हो, वा परोक्ष, यथार्थ अनुभव कहलाता है, झूठा अनुभव चाहे प्रत्यक्ष हो, वा परोक्ष, अयथार्थ कहलाता है। जैसे रस्सी को रस्सी देखना

सच्चा प्रत्यक्ष है, रस्सी को सांप देखना, वा संदेह में पड़ जाना झूठा प्रत्यक्ष है। और धूम को देखकर अग्नि का अनुमान करना सच्चा परोक्ष है, और कुहर को देखकर अग्नि का अनुमान करना झूठा परोक्ष है। इसी प्रकार आप्त पुरुष के कहने से जो ज्ञान होता है, वह सच्चा परोक्ष है, और अनाप्त पुरुष के कहने से जो ज्ञान होता है, वह झूठा परोक्ष है। इस प्रकार सभी अनुभव यथार्थ और अयथार्थ दो प्रकार के होते हैं॥

स्मृति के दो भेद यथार्थ और अयथार्थ — स्मृति भी दो प्रकार की है, यथार्थ और अयथार्थ। स्मृति अनुभव के अधीन होती है, इसलिए यथार्थ अनुभव से यथार्थ स्मृति होती है, और अयथार्थ से अयथार्थ। पर अनुभव यथार्थ भी हो, तौ भी स्मृति में भूल हो जाती है॥

अयथार्थ अनुभव के दो भेद भ्रम और संशय — अयथार्थ अनुभव के दो भेद हैं, भ्रम और संशय। अन्य वस्तु को अन्य वस्तु समझना, वा अन्य प्रकार की वस्तु को अन्य प्रकार की वस्तु समझना भ्रम है। जैसे रस्सी को सांप, सीप को चांदी, और मरुस्थल की किरणों को जल समझना भ्रम है। यह अन्य वस्तु को अन्य वस्तु समझना है। तथा रात के मन्द प्रकाश में लाल वस्त्र को काला समझना, और मेघों के चलने पर चन्द्र को चलता हुआ, और मेघों को अचल समझना भ्रम है। यह अन्य प्रकार की वस्तु को अन्य प्रकार की वस्तु समझना है, भ्रम जैसे प्रत्यक्ष में होता है, वैसे परोक्ष अनुभव में भी होता है। जैसे कुहर को देखकर अग्नि का अनुमान कर लेना, वा किसी से सुनी झूठी बात को सच मान लेना॥

संशय—एक निश्चय न होने का नाम संशय है। जैसे यह रस्सी है, कि सांप है। यह सीप है, कि चांदी है। यह लाल है, कि काला है। यह चल है, कि अचल है। इत्यादि सब संशय हैं॥

प्रत्यक्षसंशय की नाईं परोक्षसंशय भी होता है। जैसे पश्चिम से काली घटा तो उठी है, न जाने वृष्टि होगी, वा नहीं, तथा उसने कहा तो है, मैं जाउंगा, पर क्या जानें जाएगा, कि नहीं॥

संभावना—सम्भावना उस संशय को कहते हैं, जिसमें एक कोटि प्रबल रहती है, जैसे आज मेरे भाई के यहां आजाने की सम्भावना है। अथवा बीसविस्वे मेरा भाई आज यहां आजाएगा।

अनध्यवसाय—यह क्या है, ऐसे चिन्तनमात्र का नाम अनध्यवसाय है। यह कौनसी नदी होगी, यह कौनसा पक्षी है, इत्यादि। यह नामविशेष का जो निश्चय न होना है, वह अनध्यवसाय है॥

स्वप्न—स्वप्न भी भ्रम का भेद है। मन में एक ऐसी शक्ति है, कि जब बाह्य इन्द्रिय काम बंद करदें, और मन काम करता रहे, तब जो २ संस्कार उद्बुद्ध होते जाते हैं, मन के सामने वे प्रत्यक्षवत् भासने लगते हैं, अन्धेरे में भयभीत पुरुष की आंखों के सामने भयानकरूप बनने लगते हैं, कामी क्रोधी के सामने उनकी प्रबल वासनाओं के अनुसार रूप बनने लगते हैं, उन्माद रोग में ऐसे ही रूप बनने लगते हैं, ठीक इसी प्रकार स्वप्न में भी मन के सामने रूप बनने लगते हैं। मानसयोग (हिप्नोटिज्म) में भी इसी प्रकार मन के सामने रूप भासने लगते हैं, ऐसी

अवस्थाएं होती तब हैं, जब बाह्य इन्द्रिय अपना काम बंद कर देते हैं, और या तो जागो मीटा होता है, या गहरी नींद नहीं होती, उस अवस्था में संस्कारों की प्रबलता से मन स्वयं वैसे रूप ध्यान से रच कर अनुभव करने लगता है। स्वप्न में जो विषय दीखते हैं, वे विषय होते नहीं हैं, किन्तु संस्कारों के बल से भासने लगते हैं। मन में यह एक शक्ति है, कि वेग से उठे संस्कारों से उसको वे वस्तुएं भासने लगती हैं, पुत्रमरण से शोकातुर माता के सामने जाग्रत में ही पुत्र का आकार बनता रहता है, और उसके आने जाने बोलने के भुलेवे पड़ते रहते हैं। यह सब संस्कारों का प्रभाव है। अतएव स्वप्न भी मानस भ्रम है, मानस अयथार्थ अनुभव है। ऐसा भी होता है, कि जब स्वप्न में पहले किसी को देखकर स्वप्न में ही पीछे उसको स्मरण भी करता है, कि मैं उसको देख आया हूं, वा उसी के भाई को देखकर कहता है, कि तुम्हारा भाई वहां मिला था इत्यादि स्वप्नदृष्ट वस्तु के स्मरण को स्वप्नान्तिक कहते हैं, स्वप्नान्तिक स्वप्नदृष्ट की स्मृति होती है, अनुभव नहीं। कई आचार्य स्वप्न को भी स्मृति ही मानते हैं, जिस में कि संस्कारों के वेग से स्मृति के विषय प्रत्यक्षवत भासते हैं॥

प्रश्न—स्वप्न में तो ऐसी बातें भासती हैं, कि जो जाग्रत में कभी देखी नहीं होतीं। जैसे सींगों वाला पुरुष, कच्ची सड़क पर चलती हुई ट्रेन, अपना आकाश में उड़ना इत्यादि, फिर यह क्योंकर माना जाए, कि स्वप्न संस्कारों से ही होता है, क्योंकि जब सींगों वाला पुरुष कभी देखा ही नहीं, तो उसके संस्कार कैसे उत्पन्न होंगे॥

उत्तर—स्वप्न संस्कारों से ही होता है, यह निःसंदेह है।

जन्मान्ध को कभी रूप का स्वप्न नहीं आता, वह स्वप्न में भी टटोलता ही फिरता है। सो स्वप्न होता, तो संस्कारों के द्वारा ही है, अतएव अनुभव की हुई वस्तुओं का ही होता है। किन्तु स्वप्न में विवेक बुद्धि काम नहीं करती, इसलिए सम्बन्ध का व्यत्यय भासता है। जैसे विष्णुमित्र को बनारस में देखा, और रामशरण को पेशावर में, अब स्वप्न में दोनों को लाहौर में अपनी बैठक में देखता है। यहां देखा हुआ लाहौर भी है, अपनी बैठक भी है, विष्णुमित्र और रामशरण भी हैं, इसलिए इस अंश में स्वप्न संस्कारों के अनुसार ही है। हां उनके सम्बन्ध में उलट पलट हो जाता है। विष्णुमित्र और रामशरण को न कभी इकठे देखा था, न लाहौर में देखा था। बस यह सम्बन्ध उलट पलट होकर भास गया है, किन्तु भासा वही कुछ है, जो कुछ देखा हुआ है। ठीक इसी प्रकार गौ के सिरपर सींग देखे हुए स्वप्न में मनुष्य के सिरपर भास जाते हैं, पक्षियों का उड़ना देखा हुआ स्वप्न में अपने में भास जाता है। यह इसलिए होता है, कि स्वप्न में विवेक बुद्धि काम नहीं करती। अतएव मनुष्य का संस्कार जागते ही यदि सींग का संस्कार उद्बुद्ध हो जाता है, तो उसका सम्बन्ध मनुष्य से जुड़ जाता है, और जो ऐसा करने से रोकती, वह विवेक बुद्धि पहले ही बंद हो चुकी होती है, इसलिए ऐसा अनमेल का मेल कर देता है। स्वप्न में तो यहां तक विवेक का अभाव होता है, कि जिस वस्तु को पुरुष ने पहले मनुष्य देखा है, वही थोड़ी देर में भेडिया दीखने लगती है। और एक पुरुष ने अपना स्वप्न यह बतलाया, कि स्वप्न में एक पुरुष मर गया, उसको अग्नि में जलाकर जब मैं लौटा आरहा था, तो वही पुरुष मुझे मार्ग में मिला और मैंने उससे बातें कीं। जाग्रत

में कभी ऐसी बात मानने को वह तय्यार न होता, जिस पर स्वप्न में कोई शंका न हुई, बस इस विवेक के अभाव से संस्कारों द्वारा भासी वस्तुओं का सम्बन्ध ही उलट पलट होता है और कुछ नहीं ॥

समूहालम्बनज्ञान–जब अनेक पदार्थ एक साथ भास जाते हैं, तो उस ज्ञान को समूहालम्बनज्ञान कहते हैं। जैसे एक ही श्रेणि में एक साथ खड़े हुए दस लड़के एक ही दृष्टि में देखे, तो यह समूहालम्बन ज्ञान है ॥

प्रत्यक्ष में भूल कहां होती है और क्यों होती है — न्याय का काम है, भूल से बचाना। सो प्रत्यक्ष में भूल से बचने के लिए पहले इस बात का पता लगाना चाहिये, कि भूल कहां होती है, और क्यों होती है। इसी बात के समझाने के लिए प्रत्यक्ष के भेद प्रभेद दिखलाए हैं ॥

पूर्व कह आए हैं, कि प्रत्यक्ष के दो भेद हैं, निर्विकल्पक और सविकल्पक। भूल निर्विकल्पक में नहीं होती, सविकल्पक में होती है। सामने एक सीप पड़ा था, उस पर दृष्टि पड़ने से जो उस वस्तुमात्र का ज्ञान हुआ, वह निर्विकल्पक है, और वह सच है। उसको जो सीप समझा यह भी सविकल्पक है, और जो चांदी समझा, यह भी सविकल्पक है। सीप समझना यथार्थ ज्ञान है, और चांदी समझना भूल है। यह भूल क्यों हुई? इसका उत्तर यह है, कि सीप वा चांदी की चमक में बहुत कुछ समानता है, और कुछ विशेषता भी है। दूर से एक टुकड़े की चमक देखी, यह चमक चांदी की भी हो सकती है, और सीप की भी हो सकती है, अब यदि इस चमक को देखकर सीप

और चांदी दोनों के संस्कार जागपड़े, तो हमें संशय उत्पन्न हो जाएगा, कि यह चांदी है, वा सीप है। यह संशय सीप और चांदी दोनों की स्मृति होकर हुआ है, प्रत्यक्ष अभी न सीप हुआ है, न चांदी। अब यह संशय तब मिटेगा, जब दो में से एक का विशेषधर्म प्रत्यक्ष हो जाएगा। अर्थात् जब हम ध्यान लगाकर वा निकट जाकर उस चमक की विशेषता देख-लेंगे,वा उस टुकड़े की बनावट में चांदी की बनावट की विशेषता देख लेंगे तो संशय मिट जाएगा,और निश्चय हो जाएगा,कि यह सीप है। वस्तुतः पहले हमने चमकने वाली वस्तु देखी थी, अब सीप देखा है, पहले सीप नहीं देखा था। इस प्रकार तो संशय होता, और मिटता है। पर यदि उस समान चमक को देखते ही लालच से वा किसी अन्य कारण से चांदी के संस्कार जागें, सीप के संस्कार जागें ही नहीं, तो संशय नहीं होगा, भूल हो जाएगी, संशय तो इसलिए नहीं होगा, कि चांदी के सिवाय और किसी का संस्कार ही नहीं जागा, और भूल इस लिए होगी, कि अभी तक चांदी का विशेष धर्म नहीं देखा, या यों कहो, कि अभी चांदी नहीं देखी, पर ध्यान जो चांदी का ही आया है, उसने उसको चांदी देखने से पहले ही चांदी मनवालिया है, और मनुष्य झट कह देता है, कि वह चांदी पड़ी है। इसी तरह हरएक भूल को समझो। एक लंबी पतली वस्तु भूमि पर पड़ी देखी, वह रस्सी भी हो सकती है, स्याही की धार भी हो सकती है, सांप भी हो सकता है, पर भय के कारण स्मृति सांप की ही हुई, और वही मान लिया। वस्तुतः देखा न अभी सांप है, न रस्सी, न स्याही की धार। जो कुछ देखा है, वह इतना मात्र है, जो तीनों का सांझा धर्म है, इसी लिए यदि तीनों का स्मरण आजाए, तो संशय हो जाएगा,

और वह तब मिटेगा, जब इन तीनों में से जो वस्तु है, उसका विशेषधर्म प्रत्यक्ष हो जाएगा, अर्थात् वस्तुतः वह वस्तु विशेषरूप से उसी समय ही देखी जाएगी। भूल की निवृत्ति भी विशेष दर्शन से होती है। जब निकट होकर रस्सी की विशेषता देख लेता है, तो भूल दूर हो जाती है। तब पुरुष जानता है कि यह सांप नहीं है, ऐसा जानने को **बाधज्ञान** कहते हैं, इस ज्ञान से वह पहला ज्ञान-कि 'यह सांप है' बाधित हो जाता है। सो भूल का निश्चय इसी बाध ज्ञान से होता है, जब तक बाध ज्ञान न हो, भूल नहीं दूर होती। पर यदि वैसी ही दूसरी वस्तुओं का भी स्मरण आजाए, तो भूल संशय में परिवर्तित हो जाती है, जैसे रस्सी को सांप समझा, पर बाध ज्ञान होने से पहले ही रस्सी का स्मरण आगया, तो फिर संशय हो जायगा, कि यह सांप है, कि रस्सी है, अथवा न जाने रस्सी ही हो। पहले रस्सी में सर्प का भ्रम होना, और फिर थोड़ी देर में रस्सी वा सांप का संशय हो जाना भी इस बात को प्रकट करता है, कि अभी तक हमने सर्प का कोई विशेष धर्म नहीं देखा था, यदि विशेष धर्म देख लिया होता, तो कभी संशय हो ही न सकता, क्योंकि संशय सामान्य धर्म के देखने से होता है, और विशेष धर्म के देखने से मिट जाता है। जैसे पुरुष और खम्भे का सामान्य धर्म यह है, कि दोनों सीधे ऊंचे होते हैं, यह देखकर संशय हुआ, कि पुरुष है, वा खंभा है, विशेष धर्म पुरुष के हाथ भुजा आदि हैं, उसको देख कर संशय दूर हो गया, कि पुरुष है, खंभा नहीं। इसी प्रकार रस्सी को सांप जानकर फिर पीछे जो संशय हो जाता है, कि कदाचित् रस्सी ही न हो, इससे स्पष्ट है, कि अभी तक रस्सी

और सर्प का जो सामान्य धर्म है, लंबा टेढ़ा होना वही देखा था, विशेष धर्म नहीं देखा था, सो सांप देखा नहीं, मान लिया है। इसी तरह ट्रेन के चलते समय जो दूर के वृक्ष चलते दीखते हैं, वहां भी उनका चलना नहीं दीखता, दीखता केवल यह है, कि वे सामने दीखकर झट पीछे दीखने लगते हैं, क्योंकि ट्रेन आगे बढ़ जाती है, और हमें यह प्रबल संस्कार पड़े हुए हैं, कि किसी वस्तु स्थान परिवर्तन चलने से ही होता है, उन संस्कारों के बल से उनको पीछे२ हटता देखकर चलना भी मान लेते हैं, इसी लिए हम उनको अपने जाने की दिशा से उलटा दौड़ते देखते हैं, क्योंकि हमारे आगे बढ़ते जाने से वे ठीक हमारे उलटा पीछे हटते जाते हैं। वस्तुतः हम उनको चलता नहीं देखते, देखते उनको पीछे हटता हैं। सूर्य को जो हम पूर्व से निकलकर पश्चिम की ओर जाता देखते हैं, वहां भी सच यही है, कि सूर्य की क्रिया हम नहीं देखते, न सूर्य को ऊंचा २ होता देखते हैं, देखते हम केवल इतना ही है, कि जहां पहले दिखलाई दिया है, थोड़ी देर के पीछे वहां नहीं है, है कहां, पहले स्थान से कुछ आगे है, पहले स्थान से आगे किस दिशा में है? पश्चिम में। बस इतना ही तो हम प्रत्यक्ष देखते हैं। पर हमारे प्रबल संस्कार ये हैं, कि हम तभी पश्चिम में बढ़ते हैं, जब पश्चिम की ओर चलते हैं, इन संस्कारों की प्रबलता से हम सूर्य को पूर्व से पश्चिम को जाता समझते हैं। वस्तुतः सूर्य को पश्चिम में जाता नहीं देखते, पश्चिम में देखते हैं। यह पूर्व से पश्चिम में दीखना तीन प्रकार से हो सकता है, हम (हमारी पृथिवी) अचल खड़े रहें, और सूर्य हमारे सामने से पश्चिम को भागता जाए, तौभी, अथवा हम पूर्व को भागते जाएं, और सूर्य पश्चिम

को भागता जाए, तौभी, अथवा हम ही पूर्व को भागते जाएं, और सूर्य अचल खड़ा रहे, तौभी, सर्वथा प्रत्यक्ष इतना ही है, कि सूर्य पूर्व से पश्चिम में होता दीखता है। उसकी गति नहीं दीखती, तो फिर गति का जो ज्ञान है? यह अनुमान करना था, न कि धक्के से प्रत्यक्ष बना बैठना था, पर आश्चर्य है, कि सारी आयु मनुष्य की बीत जाती है, और इसको प्रत्यक्ष ही समझता रहता है, यह संस्कारों की प्रबलता है। मनुष्य को अपनी छाया जो चलती प्रतीत होती है, वह भी ऐसी ही भूल है। छाया क्या है? भूमि पर जो सूर्य, चन्द्र वा दीपक का प्रकाश पड़ रहा है, उस प्रकाश में जब मनुष्य खड़ा हो जाता है, तो वह प्रकाश मनुष्य के शरीर पर रुक जाता है, भूमि पर नहीं पड़ता, जितना रुकता है, उतनी छाया बन जाती है, शेष सारे प्रकाश रहता है। ज्यों २ मनुष्य आगे बढ़ता है, त्यों २ छाया आगे २ पड़ती जाती है, और पीछे रुकावट न रहने से पिछली छाया नष्ट होती जाती है, पर किसी वस्तु का एक स्थान से दूसरे स्थान में जाना बिना चलने के नहीं होता, इसलिए हम उसी छाया को चलती मान लेते हैं। यह सारा संस्कारों का वा स्मृति का खेल है॥

सारांश यह है, कि प्रत्यक्ष जो साक्षात् इन्द्रियों से होता है, वह निर्विकल्पक प्रत्यक्ष है, उसमें भूल नहीं होती, जो अंश उसमें संस्कार मिलाते हैं, जिस से वह एक वस्तु अनेक धर्मों वाली प्रतीत होती है, जिस में धर्म धर्मी का सम्बन्ध प्रतीत होता है, वह सविकल्पक प्रत्यक्ष है, उसमें भूल होती है, और वह इसलिए कि संस्कारों की प्रबलता से प्रत्यक्ष में स्मृति आ-घुसती है, और हम उसकी बात मान लेते हैं॥

निर्विकल्पक प्रत्यक्ष से किस तरह सविकल्पक बनते हैं — पहले पहल बच्चे को निर्विकल्पक प्रत्यक्ष होते हैं, सविकल्पक नहीं। आंखों से वह देखता है? क्या देखता है? बस एक वस्तु देखता है। क्या वह रूप है, वा रूप वाली वस्तु है? यह उसके लिए कोई भेद नहीं, उसके लिए जो कुछ है, एक वस्तु है। वा यों कहो, वह रूप ही देखता है, इसी प्रकार जब उसके शरीर से कोई वस्तु लगती है, तो उसको एक दूसरे प्रकार का अनुभव होता है? यह अनुभव स्पर्श का है। यहां भी उसके लिए स्पर्श और स्पर्श वाली वस्तु दो नहीं होते, या यों कहो, कि यह स्पर्श किसी वस्तु का है, उसके लिए यह कोई भेद नहीं, उसको एक ही अनुभव होता है। हां रंगों में जो भेद है, वह उसको ज्यों का त्यों दीखता है, काला काला ही दीखता है, और श्वेत श्वेत ही दीखता है, पर उसको यह विशेषता प्रतीत नहीं होती, क्योंकि वह एक रंग को अभी दूसरे रंग से से तुलना (मुकाबिला) नहीं करता, तुलना तब हो, जब एक के अनुभव के समय पिछले का स्मरण हो, उसको तो अभी अनुभव ही अनुभव हो रहा है, इसलिए वह एक दूसरे से विशेषता समझे बिना जैसा आया, वैसा अनुभव करता जाता है। इसी प्रकार शब्द, रस और गन्ध में भी॥

अब ज्यों २ उनके संस्कार पड़ते हैं, त्यों २ उनकी स्मृति भी होती है, तब काले रंग की स्मृति काले को श्वेत से, और श्वेत की स्मृति श्वेत को काले से भेद करा देती है। इसी प्रकार शेष इन्द्रियों के विषयों में भी भेद प्रतीत होने लगता है। यह भेद था तो पहले ही, पर भेद समझने के लिए स्मृति की भी अपेक्षा है, इसलिए अब प्रतीत होने लगा है। अब जिस वस्तु को

देखता है, उसी को छूता है, तो रूप और स्पर्श एक स्थान में पाता है, अब यह तो स्पष्ट है, कि आंखों से देखते समय जो प्रतीति हुई थी, वह कुछ और ही ढंग की थी, और अब यह छूने के समय कुछ और ही ढंग की प्रतीति हो रही है। इसलिए आंख का विषय (रूप) और त्वचा का विषय (स्पर्श) तो एक दूसरे से विलक्षण प्रतीत होते हैं,पर यह भी निश्चित है, कि वस्तु वही अब शरीर के साथ लगी है, जो पहले आंख से देखी गई थी। जब ये संस्कार दृढ़ हो जाते हैं, तो फिर यह निश्चय होता है, कि एक ही वस्तु के दो धर्म हैं, (रूप, और स्पर्श), एक आंख से दीखता है, दूसरा त्वचा से प्रतीत होता है। यही धर्म धर्मी और उनके सम्बन्ध का ज्ञान है। इसी तरह धीरे २ एक २ धर्मी के कई २ धर्म जान लेता है। तब उसको धर्मों समेत धर्मियों का प्रत्यक्ष होने लगता है। यही सविकल्पक प्रत्यक्ष है। पहले पहल तो उसको सविकल्पक ज्ञान निर्विकल्पकों को मिला २ कर बनाने पड़ते हैं। पहले पहल गौ का रूप, उसके मुख्य २ अंगों की बनावट और संस्थिति मिला २ कर गौ समझता है। फिर जब अभ्यास बहुत बढ़ जाता है, तो इतनी जल्दी समझ लेता है, कि वह मानने के लिए तय्यार ही नहीं होता, कि मैंने पहले गौ के रूप और अंगादि देखे हैं, और फिर गौ देखी है। पर होता ऐसा ही है। यह अभ्यास का माहात्म्य है, कि अब एक साथ ही प्रतीति हो जाती है। अभ्यास का बड़ा माहात्म्य है। देखिये, एक बहुत बड़ी अहिरन लोहे की हमारी आंखों के सामने पड़ी हो, तो हमें वह बड़ी भारी दीखती है, ऐसा प्रतीत होता है, कि उसका भार भी हम आंखों से देख रहे हैं, और सत्य यह है, कि भार कभी आंखों का विषय होता ही नहीं,

इसी तरह सविकल्पक प्रत्यक्ष निरा इन्द्रियों से नहीं होता, निरे इन्द्रियों से निर्विकल्पक होता है, और तत्क्षण साथ लगकर मन उसको सविकल्पक बना देता है, इसी लिए सविकल्पक में कभी भूल भी हो जाती है। क्योंकि कोई भी इन्द्रिय अपनी स्वस्थ अवस्था में अपने निजमात्र के साक्षात् विषय में कोई भूल नहीं करता। मन का साक्षात् विषय सुख दुःख का अनुभव करना है, उसमें वह भूल नहीं करता। आंखों का साक्षात् विषय रूप का दिखलाना है, उसमें वे भूल नहीं करतीं। पर उस रूपद्वारा वस्तु पहचानने में पिछली स्मृति सहायता देती है, और स्मृति संस्कारों के अधीन होती है, और संस्कार वे झटपट जाग उठते हैं, जो प्रबल हैं, इसलिए कि बार २ के अनुभव से वे दृढ़ हो गए हैं, वा इसलिए, कि मन का झुकाव उधर हो रहा है। सो बहुधा तो ये ठीक ही निकलते हैं, पर कभी २ धोखे में भी फंसा जाते हैं। एक और दृष्टान्त से देखिये, कि पांच फल पड़े हैं, पहले पांचों दीख जाएं, तब पांचों एकों का समुदाय पांच संख्या बनती हैं, पर हम समझते ऐसा ही हैं, कि उनकी संख्या भी हमने साथ ही देखली है। हमने पांचों देखे हैं, ऐसा अनुभव हुआ प्रतीत होता है, ऐसा प्रतीत नहीं होता, कि पहले फलों को देख लिया है, पीछे उनकी गिनती की है। और मन की सहायता से की है। अतएव गिनती में भी भूल होती है। सर्वथा यह सत्य है, कि इस प्रकार स्मृति की सहायता से भी जो ज्ञान होता है, वह सच्चे नियमों पर होता है, जैसे स्मृति की सहायता से हमने पांच समझे हैं, पर पांच पांच ही हैं, यही सत्य है, कि वे पांच हैं, यह अटल सचाई है, निर्विकल्पक प्रत्यक्ष जिनका होता है, उन्हीं के नियत सम्बन्धों के ज्ञान से सविकल्पक होता है, इसलिए जैसा वह सत्य है, वैसा ही यह भी सत्य

है। जो कहीं भूल होती है, वह किसी दोष से बिन देखे अंश को भी बीच में घुसेड़ देने से होती है, इसमें प्रत्यक्ष का कोई अपराध नहीं। वह बिन देखा अंश इन्द्रियदोष से, संस्कार-दोष से और विषयदोष से आता है। इन्द्रियदोष से, जैसे कामलरोग (प्रमेह) वाले को सारी वस्तुएं पीली प्रतीत होती हैं। वस्तुओं का आकार वैसा ही दीखता है, पर रूप पीला ही दीखता है, शंख उसको शंख ही प्रतीत होता है, पर श्वेत नहीं, पीला प्रतीत होता है। इसका कारण यह है, कि देखने में वस्तु का प्रतिबिम्ब आकर हमारे नेत्र पर पड़ता है, नेत्र से आगे मस्तिष्क (दिमाग) में पहुंचता है, नेत्र का शीशा पीला हो रहा है, उसमें से होकर जाने वाला प्रतिबिम्ब उसके रंग से आच्छादित हो जाता है। जैसे हरी ऐनक में से सब कुछ हरा दीखता है, क्योंकि उसमें से होकर जाने वाला प्रतिबिम्ब उस शीशे के रंग से आच्छादित हो जाता है। क्योंकि रंग सब तेज की किरणों के होते हैं। हरे शीशे पर पड़ने वाली किरणें और सब लीन हो जाती हैं, हरी प्रकाशित होती हैं, इसलिए हरएक वस्तु हरी दीखती है, वस्तुतः वहां आकर उस पर हरा रंग चढ़ जाता है। रौशनदान में जो लाल शीशा होता है, उसमें से जैसे सूर्य का प्रकाश लाल ही आता है, अर्थात् उस शीशे पर वही किरणें प्रकाशित होती हैं। सो वहां वस्तुगत कोई दोष नहीं, इन्द्रियगत दोष है। इसी प्रकार ज्वर में जिह्वा में दोष आजाने से गुड़ कड़वा लगता है। ऐसी भूल को मनुष्य उसी समय जान लेता है, कि शंख वस्तुतः पीला नहीं, और गुड़ वस्तुतः कड़वा नहीं। दूसरी भूल संस्कारदोष से होती है, जैसे दि-शाओं की भूल, विदेश में जाकर कहीं २ दिशाओं की ऐसी

भूल होती है, कि पुरुष पश्चिम को पूर्व मान लेता है, और उस को ऐसा निश्चय होता है, कि जब तक सूर्य को चढ़ता हुआ न देखले, भुलेखा नहीं मिटता। इसका कारण यह है, कि रेल में वा जहाज़ में चढ़ते समय जैसा पूर्व दिशा का निश्चय है, वह तो प्रतिदिन के संस्कारों से बड़ा दृढ़ है। अब मुंह इधर उधर फिरने से वह दिशा तो गई है भूल, रह गए हैं घर के संस्कार, कि हमारे घर इधर से सूर्य चढ़ता है, यह नहीं जानता, कि मैंने इतने पलटे खाए हैं, कि अब इधर इधर ही रहा है, वा उधर हो गया है, इसका ध्यान ही नहीं रहा, क्या वह पूर्व को प्रत्यक्ष देखता है, दिशा का प्रत्यक्ष (यदि मानो) तो सूर्य के बिना हो नहीं सकता और सूर्य को तुम देख नहीं रहे, रहा अनुमान, वह हो नहीं सकता, क्योंकि चिन्ह देखे बिना अनुमान नहीं होता, और चिन्ह कोई तुम देख नहीं रहे, रही स्मृति, वह तुम्हें रही नहीं, क्योंकि तुम्हारा मुंह जो पलटे खाता रहा है, उसका तुम्हें ध्यान नहीं रहा, जैसे किसी की आंखें बंद करके इधर उधर पलटे देकर छोड़ दो, तो वह दिशा भूल जाता है, इसी तरह तुम भूल गए हो, फिर तुम्हें यह कहने का अधिकार ही नहीं, कि इधर पूर्व है। हां इस बात की तुम्हें स्मृति ठीक है, कि जिधर सूर्य उदय होता है, वह पूर्व है। यह बात यहां भी सत्य ही निकलेगी। सो ऐसी भूलों में इस अंश में सावधान रहने की आवश्यकता है, कि कहां तक मुझे कहने का अधिकार है, इससे भूल नहीं होगी। तीसरी भूल विषयदोष से, जैसे पर्वत के शिखर पर बड़े २ वृक्ष भी नीचे से देखने में छोटे २ प्रतीत होते हैं, यहां विषय का दूर होना दोष है। कारण यह है, कि वस्तु जितनी दूर हो, उतना ही उसका प्रतिबिम्ब छोटा आता है।

इसी से दूर की वस्तुएं छोटी दीखती हैं। सूर्य, चन्द्र और तारे छोटे २ दीखते हैं। किन्तु ऐसा दीखना हमें धोखे में नहीं डालता क्योंकि बार २ के अनुभव से हम पहले ही जानते हैं, कि दूर से वस्तुएं छोटी दीखती हैं। दूर से वस्तुओं का अन्तराल जानने में जो भूल होती है, कि अन्तराल का परिमाण प्रत्यक्ष नहीं होता, उसका ज्ञान अनुमान से होता है। जिस वस्तु को हम देखते हैं, वह हमसे किस दिशा में है, यह साक्षात् अनुभव होता है, पर वह हम से कितनी दूर है, यह साक्षात् नहीं होता, यही कारण है, कि बच्चा पहले पहले चांद की ओर हाथ फैलाता है, कि मैं पकड़ लूंगा। अन्तराल का परिमाण माप २ कर होता है, और जब पुरुष यह बतलाता है, कि यहां से यह इतनी दूर होगी, तो अनुमान से कहता है, न कि प्रत्यक्ष से, जैसे हाथ पर धरी वस्तु का बोझ तो प्रत्यक्ष अनुभव होता है, पर यह १३ छटांक होगी, यह ज्ञान अनुमान से होता है, इस प्रकार प्रत्यक्ष में भूल के कारणों का ध्यान रखने से मनुष्य भूल से बचता है॥

संशय और निश्चय संशय और निश्चयरूप से भी ज्ञान के दो भेद हैं। ज्ञान चाहे सच्चा हो, वा झूठा, पर निश्चय एक हो, उस ज्ञान को निश्चयात्मक कहते हैं, और जिस में एक निश्चय न हो, उसको संशयात्मक कहते हैं। जैसे सीप को सीप ही जानना यह भी निश्चयात्मक ज्ञान है, और सीप को चांदी ही जानना यह भी निश्चयात्मक ज्ञान है। पर यह सीप है वा चांदी है, यह ज्ञान संशयात्मक है। सो यथार्थ अनुभव सारे निश्चयात्मक होते हैं, और भ्रम भी निश्चयात्मक होता है।

अर्थात् संशय से भिन्न सब निश्चयात्मक ज्ञान होते हैं, स्मृति भी संशय और निश्चय दो ही रूपों में होती है ॥

संशय और निर्णय } संशय के पीछे जो एक निश्चय कराने वाला ज्ञान होता है, उसको निर्णय कहते हैं, जैसे पहले दूर से देखकर यह संशय हुआ, कि यह रामनाथ है, वा विश्वनाथ है। अब यह इच्छा हुई, कि निश्चय करूं, कि दोनों में से कौन है? इसलिए ध्यान लगाकर वा आगे बढ़कर रामनाथ के विशेष धर्मों को देखकर कहता है, कि विश्वनाथ नहीं, रामनाथ है। यह निर्णय है, निर्णय भी निश्चय का भेद है। विशेषता केवल इतनी है, कि निर्णय में साथ दूसरी कोटि का खण्डन भी भासता है, जो सामान्य निश्चय में नहीं भासता। पहले ही जब रामनाथ का निश्चय हो, तो उसमें यह नहीं भासता, कि यह विश्वनाथ नहीं है। पर जब संशय के अनन्तर निर्णय करता है, तब उसको यह भासता है, कि यह रामनाथ है, विश्वनाथ नहीं। चाहे मुंह से इतना ही कहे, कि रामनाथ है, तौ भी अभिप्राय इतना पूरा है, कि विश्वनाथ नहीं, रामनाथ है ॥

प्रमा और अप्रमा } अनुभव के पूर्व दो भेद कहे हैं, यथार्थ और अयथार्थ। इनमें से यथार्थ अनुभव को **प्रमा** और अयथार्थ अनुभव को **अप्रमा** कहते हैं। सीप को सीप देखना यथार्थ अनुभव है, सो यह अनुभव प्रमा कहलाता है, सीप को चांदी देखना वा 'यह चांदी है, कि सीप है' ऐसा संशय करना अयथार्थ अनुभव है, सो यह अप्रमा है ॥

प्रमाण और उनका फल } प्रमा के साधन को प्रमाण कहते हैं। **हानबुद्धि, उपादानबुद्धि, वा उपेक्षाबुद्धि,** इनमें से कोई

एक फल होता है,जैसे प्रत्यक्ष में, चलते २ एक सांप देखा, देखते ही या तो उससे परे हटने का वा उसको मारडालने का निश्चय होगा, तदनुसार या तो उससे परे हट जाएंगे, या मार डालेंगे। अब यहां नेत्र प्रमाण है, क्योंकि नेत्र से हमने सांप देखा है। सांप का ज्ञान प्रमा है, और सांप से हटने वा मारने की बुद्धि हान-बुद्धि है। और आगे चलकर एक सुन्दर फूल देखा, उसे देख कर लेलेने की बुद्धि उत्पन्न हुई, और उसे ले लिया। यहां भी नेत्र प्रमाण है, फूल का ज्ञान प्रमा है, और लेने की बुद्धि उपा-दानबुद्धि है,यह उस प्रमा का फल है। और जो मार्ग में तिनके मट्टी के ढेले आदि बहुतसी वस्तुएं देखते जाते हैं, उनको न उठाने का विचार होता है, न उनसे बचने का, किन्तु उनकी उपेक्षा करके अपने मार्ग पर अपने ध्यान चले जाते हैं, यही उपेक्षाबुद्धि है। अर्थात् पहले वस्तु का ज्ञान होता है, पीछे, यह वस्तु हमारे दुःख का साधन है, ऐसा ज्ञान हानबुद्धि है, यह वस्तु हमारे सुख का साधन है, ऐसा ज्ञान उपादानबुद्धि है, और यह न हमारे सुख का साधन है,न दुःख का साधन है,ऐसा ज्ञान उपेक्षाबुद्धि है। हान, उपादान और उपेक्षाबुद्धियां जैसे वर्त-मान की दृष्टि से होती हैं, वैसे भविष्यत् की दृष्टि से भी होती हैं। डरकर भागते वा बिल में घुसते हुए भी सांप को पुरुष मारता है, कि उससे भविष्यत् में हानि की सम्भावना है, मार्ग में पड़े रुपये को इसलिए उठा लेता है, कि उससे भविष्यत् में सुखप्राप्ति की आशा है, घर से दूर मार्ग में मिलती सस्ती आवश्यक वस्तुओं में भी इसलिए उपेक्षाबुद्धि होती है, कि घर पहुंचने तक सम्भालने वा उठाने का परिश्रम अधिक पड़ता है॥

संवादी प्रमाण और विसंवादी प्रमाण — जो बात एक प्रमाण से सिद्ध होती हो, उसी को यदि कोई और प्रमाण सिद्ध करता हो, तो उसको **संवादीप्रमाण** कहते हैं, और यदि कोई प्रमाण उसके विरुद्ध हो, तो उसको **विसंवादी प्रमाण** कहते हैं। जैसे मरुभूमि में प्यासे को किसी ने बतलाया, कि यहां से दो कोस पर तुम्हें पानी मिलेगा, यह एक प्रमाण हुआ, अब कोई दूसरा भी यही बतलाए, तो यह उस पहले प्रमाण का संवादी प्रमाण होगा, अथवा आगे चलकर जब हरे २ वृक्षों का समूह देखा, तो वहां जल का अनुमान हुआ, यह भी उस पहले वा उन पहलों का संवादीप्रमाण होगा, और जब निकट जाकर नेत्र से प्रत्यक्ष देख लिया, तो यह प्रत्यक्ष भी उस पहले वा उन पहलों का संवादीप्रमाण होगा। और यदि देखने पर पानी न निकला, तो यह प्रत्यक्ष उन पहलों का विसंवादीप्रमाण होगा। इसी प्रकार किसी पुस्तक में लिखा हो, कि पृथिवी सूर्य के चारों ओर चक्र लगाती है, यही बात जिन २ ग्रन्थों में लिखी होगी, वे सब इसके संवादीप्रमाण होंगे, और जिन में इसके विरुद्ध लिखा होगा, वे सब इसके विसंवादीप्रमाण होंगे॥

प्रमाणों में प्रत्यक्ष का मान — प्रमाणों में प्रत्यक्ष का मान सब से बढ़कर होता है, यदि जान बूझकर झूठ न बोलने वाले दो पुरुष किसी बात में एक दूसरे के विरुद्ध झगड़ते हुए आएं, उन में से एक कहे, 'मैंने ऐसा सुना है' दूसरा कहे 'मैंने ऐसा देखा है' तो हम उसकी बात मानेंगे, जो देखने वाला है। इसी प्रकार एक पुरुष कहता है, मेरा अनुमान है, कि 'कल विश्वम्भर को ज्वर हो गया होगा' दूसरा कहता है, कि 'विश्वम्भर कल सारा-

दिन सुख शान्ति से मेरे साथ रहा है। यहां भी हम उसकी बात मानेंगे, जिस के पास रहा है। प्रत्यक्ष सब से बढ़कर क्यों माननीय है, इसलिए, कि प्रत्यक्ष में विषय का साक्षात् होता है, परोक्ष में नहीं। देखने में जल का नेत्रद्वारा साक्षात् होता है, अनुमान से वा शब्द से जल का साक्षात् अनुभव नहीं होता। दूसरा, प्रत्यक्ष के सहारे पर ही दूसरे ज्ञान उत्पन्न होते हैं। खांड में, आटे में, रेत में हमने पानी लीन होते देखा है। इससे हमने यह नियम प्रत्यक्ष देख लिया है, कि मसामदार वस्तुओं में पानी लीन होजाता है। अब हमारे सामने एक स्पञ्ज आता है, हमने स्पञ्ज में पानी लीन होते कभी नहीं देखा, तौ भी हम अनुमान से जान लेते हैं, कि इसमें पानी लीन हो जाएगा। क्योंकि जिस नियम से पानी लीन होता है, वह हमने प्रत्यक्ष देखा हुआ है, इस प्रकार अनुमान प्रत्यक्ष के सहारे पर उत्पन्न हुआ। जो कुछ हमने प्रत्यक्ष अनुभव किया है, वा अनुमान किया है, वह दूसरे को समझाते हैं, इस प्रकार हमारे सारे ज्ञान का मूल साक्षात् अनुभव होता है, अतएव साक्षात् अनुभव के विना जिज्ञासा निवृत्त नहीं होती, और साक्षात् होने से जिज्ञासा निवृत्त होजाती है। अनुमान से यह जानकर भी, कि स्पञ्ज में पानी लीन हो जाएगा, प्रत्यक्ष देखने की इच्छा होती है, प्रत्यक्ष देखकर जिज्ञासा निवृत्त हो जाती है। मार्ग में प्यासे को किसी ने बतलाया, कि "वह जो कुआं है, वह चल रहा है, वहां तुम्हें पानी मिलेगा" यह सुनकर कुएं का चलता होना निश्चय हो जाने पर चिन्हों से भी जानना चाहता है। अतएव कुछ आगे बढ़कर कान लगाकर उसकी ध्वनि सुनता है, ध्वनि सुन कर भी जिज्ञासा बनी रहती है, जब निकट जाकर चलता

देख लेता है, तो जिज्ञासा निवृत्त हो जाती है। साक्षात् होने पर ही पूरा निश्चय बैठता है। इसी लिए विज्ञान शास्त्री पदार्थों के जिन गुणों और कर्मों की शिक्षा देते हैं, उनका प्रयोग करके प्रत्यक्ष दिखलाते हैं। सो प्रत्यक्ष सब का मूल है, और सब से प्रबल प्रमाण है॥

संवादी और विसंवादी प्रवृत्ति — वस्तु का ज्ञान हो जाने के पीछे उसके लेने के लिए पुरुष जो चेष्टा करता है, उसको **प्रवृत्ति** कहते हैं। प्रवृत्ति दो प्रकार की होती है, **संवादि-प्रवृत्ति** और **विसंवादिप्रवृत्ति**। सफल प्रवृत्ति को संवादि-प्रवृत्ति कहते हैं, और निष्फल को विसंवादी। जल को जल जानकर जब पुरुष पीने के लिए प्रवृत्त होता है, तो वह जल पीकर प्यास मिटाता है, अतएव ऐसे स्थल में जल पीने के लिए जो उसकी प्रवृत्ति हुई है, वह संवादिप्रवृत्ति है। और जहां मृगतृष्णा को जल मानकर प्रवृत्त होता है, तो जल नहीं पाता है, वहां उसकी प्रवृत्ति विसंवादिप्रवृत्ति है॥

संवादीभ्रम और विसंवादीभ्रम — जब किसी वस्तु के जानने में भूल हो, तो उसको लेने वा त्यागने के लिए जो प्रवृत्ति होगी, वह निष्फल होगी, पर कभी २ ऐसा भी अवसर होजाता है, कि जानने में तो भूल हो, फिर भी प्रवृत्ति सफल होजाए, जैसे दूर से सीप को चांदी देखा, पास गया, तो वह तो सीप जान पड़ा, पर उसके साथ ही चांदी का टुकड़ा भी मिल गया, वा उसको उठाया, तो उसके नीचे से चांदी का टुकड़ा भी मिल गया, अब सीप को चांदी जानने में हुई तो भूल थी, पर प्रवृत्ति फिर भी सफल होगई, ऐसे भ्रम को संवादीभ्रम कहते

हैं, और यदि चांदी न मिले, तो वह विसंवादीभ्रम कह लाएगा। इसी प्रकार किसी पुरुष ने रात के अन्धेरे में एक रत्न की प्रभा को रत्न समझा, दूसरे ने एक छोटे से छेद में निकलती हुई दीप प्रभा को रत्न समझा, दोनों दौड़ कर रत्न लेने गए। सो मिथ्याज्ञान तो दोनों को है, तथापि दीप की प्रभा को रत्न समझकर दौड़ने वाला रत्न नहीं पाएगा, पर रत्न की प्रभा को रत्न जानकर दौड़ने वाला अवश्यमेव रत्न को पाएगा। इसलिए दीप प्रभा में जो रत्न का भ्रम है, वह विसंवादी भ्रम है, और रत्न की प्रभा में जो रत्न का भ्रम है, सो संवादीभ्रम है। प्रत्यक्ष की भांति परोक्ष में भी संवादीभ्रम होता है। जैसे कुहर को धूम जानकर वहां अग्नि का अनुमान करके वहां से अग्नि लाने के लिए गए पुरुष को दैवयोग से अग्नि मिल गई, तब कुहर को धूम जानना, वा उससे वहां अग्नि का जानना संवादीभ्रम कह लाता है॥

अनुमान प्रकरण।

अनुमान प्रत्यक्ष के सहारे पर होता है, इसलिए प्रत्यक्ष के अनन्तर अनुमान का निरूपण करते हैं:—

अनुमान होता है, दो ज्ञात सचाइयों से एक अज्ञात सचाई का पता लगा लेना। जैसे एक तो हमें यह ज्ञात है, कि जहां धूम होता है, वहां अग्नि अवश्य होती है, दूसरा हमने यह आंखों से देख लिया, कि वह उस जगह से धूम निकल रहा है, अब हम किसी से सुने बिना और वहां जाकर अग्नि को प्रत्यक्ष देखे बिना वहीं खड़े २ यह जान जाएंगे, कि वहां अग्नि है, यह अनुमान है। इसी प्रकार यह हमें ज्ञात है, कि मसालेदार

वस्तुओं में पानी लीन होता है, और यह आंखों से देख रहे हैं, कि खाण्ड मसामदार हैं, अब हम यह बिना किसी से सुने वा देखे बिना ही जानलेंगे, कि खाण्ड में कुछ पानी समाजाएगा। इसी प्रकार यह हमें ज्ञात है, कि मनुष्य के शरीर में ९९ से अधिक जितनी उष्णता हो, उतना ही ज्वर होता है, अब एक पुरुष आकर कहता है, कि इस समय उमेश के शरीर की उष्णता १०२ है, अब यह हम बिन देखे और बिन सुने जानलेंगे, कि उमेश को ३ अंश ज्वर है। इस प्रकार प्रतिदिन अनेकों बातें अनुमान से जानते हैं, और अनेकों काम अनुमान के अनुसार करते हैं॥

जैसे प्रत्यक्ष में भूल होती है, वैसे अनुमान में भी भूल होती है। कुहर को धूम समझकर अग्नि का अनुमान किया, वहां जाकर देखा,कोई अग्नि नहीं। तारों की स्थिति देखकर समझा, १२ बजे होंगे, घड़ी उठाकर देखा, तो एक बजगया है। काली घटा को देखकर समझा, कि मींह बरसेगा, वह एक भी बूंद बरसाए बिना ही लंघ गई। एक बार एक ग्राम्याध्यापक (देहाती मुदर्स) ने समय पर ५००) की गेहूं खरीदी, दो ही महीने में उसको १५०)का लाभ हुआ। दस महीने का मासिक (तनखाह) मुफ्त में मिलगया,फूला न समाया,अगले वर्ष त्रैराशिक (अरबा लगाकर ९००) के लाभ की आशा पर तीन हजार की गेहूं खरीदली, अपनी मुनशानी के भूषण और घरबार सब गहने रख दिया, और त्रैराशिक के भरोसे पर स्कूल से भी छः महीने की छुट्टी लेली, पर गेहूं खूब सस्ती हो गई, पेट से बचाकर जोड़ा जुड़ाया रुपया और स्त्री के भूषण सब घाटे में चले गए,और मुनशीजी त्रैराशिक को कोसते रह गए, इस प्रकार जब कई अनुमान मिथ्या होते दीखते हैं, तो किस प्रकार हम कोई अनु-

मान करके निश्चय कर सकते हैं, कि हमारा यह अनुमान सत्य है, वा मिथ्या है। सुनो, इसके लिए इन तीन बातों पर ध्यान रक्खोगे, तो कभी भूल नहीं निकलेगी, वे तीन बातें यह हैं:—साध्य, साधन और सम्बन्ध। जो बात तुम सिद्ध करनी चाहते हो, वह साध्य है, जिसके द्वारा सिद्ध करते हो, वह साधन है। जैसे जब धूम से अग्नि को सिद्ध करते हो, तो अग्नि साध्य है, धूम साधन है। साधन को लिङ्ग (चिन्ह=निशान) वा हेतु भी कहते हैं, अब यह जानना चाहिये, कि इन दोनों में अवश्य कोई अटल सम्बन्ध है, जिस से धूम को देखकर हम यह कह सकते हैं, कि देखो वह धूम दीख रहा है, वहां अवश्यमेव अग्नि होगी। यदि सम्बन्ध के बिना ऐसा कहते, तो यह भी कह डालते, कि वह बिल्ली खड़ी है, वहां अवश्यमेव अग्नि होगी, और यदि सम्बन्ध अटल न होने में भी ऐसा कहते, तो यह भी तो कह डालते, कि वह रसोई है, वहां अवश्यमेव अग्नि होगी। बिल्ली और अग्नि का कोई सम्बन्ध नहीं, इसलिए बिल्ली को देखकर तो अग्नि का नाम भी नहीं लेते, हां रसोई और अग्नि का सम्बन्ध है, रसोई में प्रायः अग्नि रहती है, इसलिए हम अग्नि के होने की वहां संभावना तो कर सकते हैं, पर यह नहीं कहते, कि अवश्यमेव वहां अग्नि होगी, पर धूम को यदि ऐसे स्थान पर भी देखें, जहां पहले कभी अग्नि न देखी हो, तो भी हम दृढ़ निश्चय से कहेंगे, कि यहां अवश्यमेव अग्नि है। इससे यह सिद्ध है, कि इन दोनों में कोई अटल सम्बन्ध है, जिस से यह निश्चय होता है, कि यहां अग्नि का होना अटल है। इस अटल सम्बन्ध को व्याप्ति कहते हैं। बस अनुमान करने में इस अटल सम्बन्ध (व्याप्ति) को पहले जांच लेना चाहिये, यदि इस सम्बन्ध के जानने में

भूल होगई, तो अनुमान में भूल होगी, इसमें भूल न हुई, तो अनुमान में भूल न होगी ॥

व्याप्ति का सविस्तर वर्णन — व्याप्ति ऐसे सम्बन्ध को कहते हैं, जो अटल हो, यह पूर्व कह आए हैं । अटल सम्बन्ध के अर्थ हैं, उसके बिना न होना । जैसे धूम का अग्नि से अटल सम्बन्ध है, क्योंकि धूम अग्नि के बिना नहीं होता, कारीगरी का कारीगर से अटल सम्बन्ध है, क्योंकि कारीगरी कारीगर के बिना नहीं होती, देखने का आंख से और सुनने का कान से अटल सम्बन्ध है, क्योंकि देखना आंख के बिना और सुनना कान के बिना नहीं होता । पर यह हम देखते हैं, कि अटल सम्बन्ध कहीं दोनों का एकतुल्य होता है, जैसे तेज का और उष्णता का। जहां तेज होगा, वहां उष्ण स्पर्श होगा, जहां उष्ण स्पर्श होगा, वहां तेज होगा । अग्नि सूर्य आदि में तेज है, उनमें उष्णता है, और पत्थर, पानी, वायु तभी उष्ण होते हैं, जब उनमें अग्नि वा तेज की किरणें प्रवेश करती हैं । रगड़ने से जो पदार्थ उष्ण होते हैं, उनमें भी तेज प्रकट हो आता है, अतएव बांसों में अधिक रगड़ से आग लग जाती है । सो उष्ण स्पर्श और तेज दोनों में अटल सम्बन्ध है, उष्ण स्पर्श तेज के बिना नहीं होता, तेज उष्ण स्पर्श के बिना नहीं होता । यह तो हुआ दोनों का एक तुल्य अटल सम्बन्ध । अब कहीं ऐसा होता है, कि एक की ओर से तो अटल सम्बन्ध है, पर दूसरे की ओर से नहीं । जैसे धूम और अग्नि का । इनमें धूम की ओर से तो अटल सम्बन्ध है, धूम अग्नि के बिना कभी नहीं होता, पर अग्नि की ओर से अटल सम्बन्ध नहीं, अग्नि धूम के

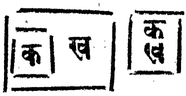
बिना भी होती है। जैसे भखे हुए कोइले, उनमें अग्नि है, धूम नहीं, तपाकर लाल किया हुआ लोहा, उसमें भी अग्नि है, धूम नहीं। यह है दोनों में से एक का अटल सम्बन्ध ॥

अब प्रश्न यह है, कि अनुमान करने के लिए साध्य और साधन में जो अटल सम्बन्ध का होना आवश्यक बतलाया है, वह क्या दोनों का अटल सम्बन्ध होना चाहिये, वा दोनों में से एक का, और एक का हो, तो किस का। इसका उत्तर यह है, कि जिस से सिद्ध करना है, उसका अटल सम्बन्ध होना चाहिये, जो सिद्ध किया जाना है, उसका चाहे हो, चाहे न हो, इससे कोई रुकावट नहीं आसकती। जैसे धूम से हम अग्नि सिद्ध करते हैं, तो हमें यह देखना है, कि धूम अग्नि के बिना न हो सकता हो, तभी तो हम कह सकेंगे, कि जहां धूम होता है, वहां अग्नि होती है। अग्नि हमने सिद्ध करना है, वह बेशक धूम के बिना रहे, इससे हमारा कोई बिगाड़ नहीं, क्योंकि हम यह थोड़ा ही कहते हैं, कि जहां अग्नि होती है, वहां धूम होता है, इससे यह सिद्ध हुआ, कि साध्य और साधन में से साधन का तो साध्य से अटल सम्बन्ध चाहिये, पर साध्य का साधन से अटल सम्बन्ध हो, चाहे न हो, दोनों अवस्थाओं में अनुमान यथार्थ होगा ॥

व्याप्ति, व्याप्य और व्यापक—अटल सम्बन्ध को व्याप्ति कहते हैं, जिस का यह अटल सम्बन्ध हो, उसको व्याप्य और जिस के साथ हो, वह व्यापक है। साधन व्याप्य और साध्य व्यापक होता है। जैसे अग्नि के उदाहरण में धूम व्याप्य है, क्योंकि जहां धूम होगा, वहां अवश्य अग्नि होगी, अग्नि

व्यापक है, क्योंकि जहां अग्नि न होगी, वहां धूम कभी न होगा। इन दोनों का इस तरह का जो सम्बन्ध है, इसी का नाम व्याप्ति है॥

व्याप्ति दो प्रकार की होती हैं—समव्याप्ति और विषमव्याप्ति। समव्याप्ति वहां होती है, जहां दोनों ही एक दूसरे के बिना न हो सकें। जैसे गन्ध बिना पृथिवी के नहीं होता, और पृथिवी बिना गन्ध के नहीं होती। ऐसी समव्याप्ति में दोनों एक दूसरे के साध्य साधन होजाते हैं, गन्ध से हम पृथिवी का पृथिवी से गन्ध का अनुमान कर सकते हैं। दूसरी विषमव्याप्ति वहां होती है, जहां एक तो दूसरे के बिना न होसके, पर दूसरा उसके बिना भी होसके। जैसे धूम तो अग्नि के बिना नहीं होता, पर अग्नि धूम के बिना भी होती है। ऐसी व्याप्ति में साध्य साधन सदा नियत रहते हैं, अर्थात् हम धूम से ही अग्नि का अनुमान कर सकते हैं, अग्नि से धूम का नहीं। समव्याप्ति के व्याप्य व्यापक को समव्याप्य और समव्यापक कहते हैं, और विषमव्याप्ति के व्याप्य व्यापक को विषमव्याप्य और विषम व्यापक कहते हैं। स्थूलतः यूं समझो, कि व्याप्य वह है, जो व्यापक की परिधि (घेरे) से परे न जाए, और व्यापक वह है, जो व्याप्य की परिधि से वरे न रहे। जैसे क को ख का व्याप्य मानें, तो उसकी दो परिधियां इस प्रकार होंगी।

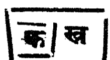


इनमें से पहली परिधि में क की सीमा ख के अन्दर है, दूसरी में बराबर है, क ख की सीमा से परे नहीं गया, इसलिए व्याप्य है। अब दूसरी ओर व्यापक जो ख है, वह पहली परिधि में क से परे तक है, दूसरी में बराबर है, वरे कहीं नहीं,

इसलिए व्यापक है। भेद इन दोनों में यह है, कि पहली परिधि में क, ख का व्याप्य ही बन सकता है, व्यापक नहीं बन सकता, क्योंकि ख से परे रह जाता है, और ख, क का व्यापक ही हो सकता है, व्याप्य नहीं हो सकता, क्योंकि ख, क से परे निकल गया है। पर दूसरी परिधि में क, ख का और ख क का व्यापक भी है, और व्याप्य भी है, क्योंकि क ख से परे नहीं गया, इसलिए ख का व्याप्य भी है, और परे नहीं रहा, इसलिए व्यापक भी है, इसी प्रकार ख, क से परे नहीं रहा, इसलिए व्यापक भी है। और परे नहीं गया, इसलिए व्याप्य भी है। पहली परिधि में क ख की विषम व्याप्ति * है, दूसरी में सम-व्याप्ति है। अब यह स्पष्ट है, कि पहली परिधि में तो हम यही कह सकते हैं, कि जहां क है, वहां ख है, क्योंकि ख ने क की सारी जगह घेरी हुई है, पर यह नहीं कहते, कि जहां ख है, वहां क है, क्योंकि ख वहां भी है, जहां क नहीं है। पर दूसरी परिधि में दोनों का देश पूरा एक जितना है, इसलिए हम यह भी कह सकते हैं, कि जहां क है, वहां ख है, और यह भी, कि जहां ख है, वहां क है॥

स्वार्थानुमान और प्रार्थनानुमान — जब पुरुष स्वयं अनुमान से किसी पदार्थ का निश्चय करता है, तो उसको स्वार्थानुमान कहते हैं, जैसे बार २ यह देखकर कि जहां धूम होता है, वहां अग्नि होती है, यह निश्चय कर लेता है, कि धूम अग्नि के बिना

---

* विषम व्याप्ति में यह आवश्यक नहीं, कि व्यापक चारों ही ओर बढ़ा हुआ हो, किसी एक ही ओर थोड़ासा बढ़कर रहने में भी विषम व्याप्ति हो सकती है। जैसे 

यहां बाहर का सारा घेरा ख का है; और अन्दरला क का है॥

नहीं होता, अब वह जंगल में अग्नि को ढूंढता हुआ, जहां धूम देखता है, वहां अग्नि के होने का निश्चय करके चला जाता है। अथवा अग्नि की उसको कोई आवश्यकता नहीं, तो भी धूम को देखकर उसको 'जहां २ धूम होता है,वहां२ अग्नि होती है' इस व्याप्ति का स्मरण होकर वहां अग्नि का निश्चय हो जाता है। यह है स्वार्थानुमान । इसमें केवल इतनी ही आवश्यकता है,कि अनुमान करने वाले को व्याप्ति का निश्चय हो ॥

पर जब अनुमान द्वारा कोई पदार्थ दूसरे को समझाना हो, तो वाक्य बोलना होगा, और वाक्य रचना ऐसे ढंग पर करनी होगी,जिससे समझने वाला अनायास उस बात को समझ जाए। इसके लिए इस प्रकार वाक्य प्रयोग किये जाते हैं ॥

पहली रीति पञ्चावयव वाक्य

कल्पना करो, कि हम अपने नौकर के साथ खेतों में घूम रहे हैं, दिया सिलाई हमारे पास नहीं, और अग्नि की आवश्यकता पड़ी, हमने चारों ओर ध्यान दिया, और दूर एक कुंएं पर से धूम निकलता दीख पड़ा, हमने अनुमान कर लिया, कि वहां अग्नि है, यह स्वार्थानुमान हुआ, अब हम नौकर को वहां से अग्नि लाने के लिए इस तरह समझाएंगे, 'उस कुंएं पर अग्नि है, 'क्योंकि वहां धूम है' 'जहां २ धूम होता है, वहां २ अग्नि होती है' जैसे रसोई में था, 'यहां भी धूम है' 'इस लिए यहां अवश्य अग्नि है'। इससे हमारे नौकर को भी वहां अग्नि का निश्चय हो जाएगा। अर्थात् पहले तो जो बात हमने मानी है, उसकी प्रतिज्ञा की, कि 'वहां अग्नि है' इसी लिए इस का नाम प्रतिज्ञा है, फिर हम उसको हेतु बतलाते हैं, कि क्यों

हम ऐसा कहते हैं, 'क्योंकि वहां धूम है' इसी लिए इसका नाम हेतु है। पर हेतु वही हो सकता है, जिसका साध्य के साथ व्याप्ति सम्बन्ध हो, इसलिए व्याप्ति बतलाते हुए हम उसको व्याप्ति का निश्चय कराने के लिए उदाहरण भी दिखलाते हैं, 'जहां २ धूम होता है, वहां २ अग्नि होती है, जैसे रसोई में' इसको उदाहरण कहते हैं। फिर उसको पक्ष में घटाकर दिखलाते हैं, 'यहां भी धूम है' यह उपनय कहलाता है, फिर उससे साध्य की सिद्धि करके दिखलाते हैं, 'इसलिए यहां भी अवश्य अग्नि है' इसको निगमन कहते हैं ॥

सो प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमनन। ये पांच अवयव कहलाते हैं। समझाने का पूरा ढंग तो यही है, पर पुस्तकों में लिखने के लिए संक्षेप से पिछले तीन ही पर्याप्त समझे जाते हैं ॥

जहां २ धूम होता है, वहां अग्नि होती है।

यहां धूम है।

इसलिए यहां अग्नि है।

इस प्रकार व्याप्ति, उपनय और निगमन ही दिखला देते हैं। अर्थात् पहले एक व्यापक नियम दिखला दिया, कि जहां धूम होता है, वहां अग्नि होती है। फिर यह दिखला दिया, कि यहां धूम है। इससे अपने आप यह परिणाम (नतीजा) निकल आता है, कि यहां अग्नि है ॥

इन वाक्यों को नीचे ऊपर रखने से भी परिणाम वही निकलता है, जैसे—

यहां धूम है।

और जहां २ धूम होता है, वहां २ अग्नि होती है।

इसलिए यहां अग्नि है।

पर व्याप्ति वाक्य को ऊपर रखना ही अधिक उत्तम है, इससे परिणाम झट भासने लगता है। व्याप्ति वाक्य में साध्य-साधन का सम्बन्ध ऐसे ढंग पर बतलाया जाता है, कि व्यापक और व्याप्य का स्पष्ट बोध होसके, जैसे जहां २ धूम होता है, वहां २ अग्नि होती है, इससे यह स्पष्ट भास रहा है, कि धूम व्याप्य है, और अग्नि व्यापक है। व्याप्य पहले कहा है, और व्यापक पीछे। जैसे उक्त वाक्य में धूम पहले कहा है, अग्नि पीछे। इसको उलट कर व्यापक को पहले और व्याप्य को पीछे भी कह सकते हैं, जैसे वहां अवश्य अग्नि होती है, जहां धूम होता है। पर व्याप्य को पहले कहने में व्याप्य व्यापक झट समझ में आते हैं, इसलिए पहले ही कहना चाहिये। यूं भी 'जो' 'वह' में से 'जो' का प्रयोग ही पहले रखना उचित होता है॥

अभ्यास के लिए कुछ उदाहरण:—

१.—जो २ वस्तु मसामदार होती हैं, उस २ में पानी लीन हो जाता है।

भूमि मसामदार है।

इसलिए भूमि में पानी लीन होजाता है।

२—जिस २ वस्तु में कारीगरी होती है, वह २ वस्तु किसी कारीगर की बनाई होती है।

इस घड़ी में कारीगरी पाई जाती है।

इसलिए यह घड़ी किसी कारीगर की बनाई हुई है।

३—जो २ लेख होता है, वह किसी मनुष्य का लिखा होता है।

यह एक लेख है।

इसलिए यह किसी मनुष्य का लिखा हुआ है।

इन तीनों वाक्यों में तीन बातें पाई जाती हैं,व्याप्ति,व्याप्य और व्यापक। पहले वाक्य में व्याप्ति दिखलाई जाती है, दूसरे में व्याप्य, और तीसरे में व्यापक की सिद्धि। व्याप्ति वाक्य को 'जो २, वह २' 'जहां २, वहां' 'जब २,तब' शब्दों से प्रकट करते हैं। जो २ मनुष्य है, वह २ मरने वाला है। जहां २ धूम होता है, वहां २ अग्नि होती है, 'जब २ सूर्य उदय होता है, तब २ दिन होता है'। सब और प्रत्येक शब्द भी व्याप्ति वाक्य को प्रकट करते हैं। सब मनुष्य मरने वाले हैं, वा प्रत्येक मनुष्य मरने वाला है। इसके भी वही अर्थ हैं, कि जो २ मनुष्य है, वह २ मरने वाला है॥

यह भी नियम नहीं. कि व्याप्ति के प्रकट करने के लिए इनमें से कोई शब्द अवश्य हो. इनके बिना भी व्याप्ति को प्रकट करते हैं। जैसे मनुष्य मरने वाले हैं। इसका भी तात्पर्य यही है, कि सब मनुष्य मरने वाले हैं। सो यह बोलने वाले की इच्छा पर है, वह किसी तरह वाक्य बोले, तुम्हें यह देख लेना चाहिये, कि वह इस व्याप्ति वाक्य में व्यापकनियम बतलाता है, वा नहीं। यदि व्यापकनियम बतलाता है,तो चाहे,किसी तरह कहे, परिणाम ठीक निकल सकता है,पर यदि व्यापक नियम नहीं बतलाता, तो परिणाम नहीं निकल सकेगा। जैसे मनुष्य मरने वाला है, इस वाक्य में व्यापकनियम बतलाया है,'मरना सब मनुष्यों के लिए अटल है' इसलिए इससे यह परिणाम निकल सकता है, कि हरि मनुष्य है, इसलिए वह मरने वाला है। पर यदि व्यापक नियम नहीं बतलाया, तो परिणाम नहीं निकलेगा, जैसे कोई कहे मनुष्य लिखना जानते हैं, यह व्यापक नियम

नहीं, क्योंकि सब मनुष्य लिखना नहीं जानते, इसलिए इससे यह परिणाम नहीं निकाल सकते, कि हरि मनुष्य है, इसलिए वह लिखना जानता है, क्योंकि लिखना है तो मनुष्य का ही धर्म। मनुष्यों के सिवाय और कोई लिखना नहीं जानता। पर लिखना मनुष्य का स्वाभाविक-धर्म नहीं, नैमित्तिक है,जिस ने लिखना सीखा है, वह लिख सकता है, सारे नहीं॥

अब विचारणीय यह है, कि व्यापक नियम का पता कैसे लग सकता है। क्योंकि सब व्यक्तियों को कोई भी प्रत्यक्ष नहीं देख सकता। कौन है, जिसने सारी भूमि के मनुष्य प्रत्यक्ष देखे हों, जब नहीं देखे, तो फिर किस तरह कोई कह सकता है, कि सब मनुष्य मरने वाले हैं, और यदि सबको देखले, तौ भी वह ऐसा नहीं कह सकता, क्योंकि फिर भी सब मरते तो नहीं देखे, जिससे यह व्यापक नियम उसने देख लिया हो, कि सब मनुष्य मरने वाले हैं। जब वर्तमान मनुष्यों को मरते किसी ने प्रत्यक्ष नहीं किया, तो जो अभी भविष्यत में जन्मेंगे, उनका मरना कैसे निश्चित हो। इसलिए सब मनुष्य मरने वाले हैं, यह नियम उस समय बनाना, जब होचुके वर्तमान और होने वाले सब मनुष्यों को मरता देख लोगे। जब तक ऐसा नहीं करो, इतनी बड़ी प्रतिज्ञा करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं, कि सब मनुष्य मरणधर्मा हैं ?॥

इसका उत्तर यह है, कि बेशक देखा तो हमने सौ पचास मनुष्यों को है, पर इसके विपरीत कुछ नहीं देखा उत्पत्ति तो हम आगे देख रहे हैं, और इसी तरह पीछे भी होती आई है, पर पिछलों में से कोई दोसौ वर्ष का भी पुरुष

हमें जीता नहीं मिलता। तो इन दो बातों से—एक तो बहुत से मनुष्यों को मरता देखने से, दूसरा किसी को अमर न देखने से, हमें निश्चय हो जाता है, कि जो नाम मनुष्य है, मरणधर्मा है, अर्थात् हमारा ज्ञान व्यक्तियों से आरम्भ होकर होते २ जाति पर जा टिकता है। परिणाम यह निकला, कि व्याप्ति के निश्चायक दो ज्ञान होते हैं—एक तो सहचारदर्शन, (बार २ वैसा देखना) दूसरा व्यभिचार का अदर्शन (उससे उलट कभी न देखना)। कई बार मनुष्यों को मरते देखा है, और अमर कोई देखा नहीं, इससे निश्चय होगया, कि सब मनुष्य मरने वाले हैं। पत्थर को पानी में डूबा हुआ कई बार देखा है, और ऊपर तैरता कभी देखा नहीं, इससे निश्चय हो गया, कि सब पत्थर पानी में डूब जाते हैं। धूम को अग्नि के साथ तो कई बार देखा है, बिना अग्नि के कभी देखा नहीं, इससे निश्चय होगया, कि जहां धूम होता है, वहां अग्नि होती है। इस प्रकार बार २ सहचार देखने और व्यभिचार न देखने से व्याप्ति का निश्चय होता है। सो सहचार दर्शन के बिना तो व्याप्ति का निश्चय होता ही नहीं, पर सहचार पर भी यदि व्यभिचार भी दीखपड़े, तौ भी व्याप्ति का निश्चय नहीं होता। जैसे सारे तैराक पुरुषों के बीच में रहने वाला स्वयं भी तैरना जानने वाला एक मल्लाह इस निश्चय पर नहीं पहुंचता, कि सब मनुष्य तैरना जानते हैं, यद्यपि उसने बार २ मनुष्यों को तैरते देखा है, पर न तैरते भी देखा है। इसलिए जैसे उसको 'मनुष्य मरण धर्मा है' इस व्याप्ति का निश्चय है, वैसा यह निश्चय नहीं, कि 'मनुष्य तरण धर्मा है'। यद्यपि उसने मरते ५० ही देखे हों, और तैरते पांच हज़ार। भेद यह है, कि मनुष्य के मरणधर्मा होने में तो जो देखा है,

सहचार ही देखा है, व्यभिचार नहीं देखा, पर तरणधर्मा होने में व्यभिचार भी देखा है । सो जब बार २ सहचार का तो दर्शन हो, और व्यभिचार का दर्शन कभी न हो, तो सबको देखे बिना ही 'सब वैसे हैं' का निश्चय हो जाता है, और वह सदा अटल ही बना रहता है ॥

सहचार तो देखने में आए, और व्यभिचार कहीं देखने में न आए, इन दो बातों से जो व्याप्ति का निश्चय होगा, उससे व्यवहार तो हमारे चल जाएंगे, उनमें कोई बाधा नहीं आएगी, पर परमार्थ दृष्टि से इतने मात्र से व्याप्ति का निश्चय नहीं हो सकता, कारण, हमने सौ स्थल में सहचार देखा, और व्यभिचार कहीं न देखा, तौ भी संभव है, कि एक सौ एकवीं जगह पर व्यभिचार हो, जैसे एक पुरुष ने गुलाब के फूल जितनी बार देखे, सब गुलाबीरंग के देखे, अब उसने गुलाब के फूल और गुलाबीरंग का सर्वत्र सहचार तो देखा है, और व्यभिचार कहीं नहीं देखा, इससे उसको व्याप्ति का निश्चय तो ऐसा हो जाएगा, कि जो २ गुलाब का फूल होता है, वह २ गुलाबीरंग का होता है, और गुलाबीरंग भी जब गुलाब के नाम पर बोला जाता है, तो इससे उसको और भी दृढ निश्चय होगा, कि सब गुलाब पुष्प गुलाबीरंग के होते हैं, पर है यह भूल । गुलाब के फूल श्वेत भी होते हैं । इसलिए सहचार का ज्ञान और व्यभिचारज्ञान का अभाव, बस इतने मात्र से भी अटल सम्बन्ध का यथार्थ पता नहीं लग सकता । तब फिर इसका यथार्थ पता कैसे लगे ? इसका उत्तर यह है, कि 'क्यों ऐसा होता है' इसका पता लगाने से, अर्थात् हेतु

का साध्य से क्यों अटल सम्बन्ध है, इसका पता लगाने से व्याप्ति का यथार्थ पता लगता है। जैसे—

जहां २ धूम होता है, वहां २ अग्नि होती है।

उस कुंएं पर धूम है।

इसलिए वहां अग्नि है।

यहां धूम हेतु है, और अग्नि साध्य है। अर्थात् धूम चिन्ह है अग्नि का। क्योंकि अग्नि के साथ उसका अटल सम्बन्ध है। क्यों अटल सम्बन्ध है, इसका पता लगाना ही व्याप्ति का पूरा पता लगाना है। अच्छा, तो कहिये क्यों अटल सम्बन्ध है? इसका उत्तर यह है, क्योंकि धूम अग्नि से ही उत्पन्न होता है, सो जब धूम उत्पन्न ही अग्नि से होता है, तो जहां धूम होगा, वहां अग्नि का होना आवश्यक हुआ, सो यहां हेतु साध्य में कार्य कारणभाव सम्बन्ध व्याप्ति का निश्चायक है॥

इस प्रकार व्याप्ति का पूरा पता देने वाले ये सम्बन्ध हैं—

१—यह उसका कार्य है।

२—यह उसका कारण है।

३—ये दोनों उस एक के कार्य हैं।

४—यह उसका समवायी है वा समवेत है।

५—यह उसका एकार्थ समवायी है।

६—यह उसका संयोगि है।

७—यह उसका विरोधी है।

इनके उदाहरण

(१) कार्य से कारण का अनुमान करने में 'यह उसका कार्य है' इससे व्याप्ति का निश्चय होगा। जैसे—

जहां २ धूम होता है, वहां २ अग्नि होती है।

उस कुंएं पर धूम है।

इसलिए वहां अग्नि है।

यहां हेतु धूम है, धूम से अग्नि की सिद्धि करते हैं। इसलिए हमें कोई ऐसी बात चाहिये, जिससे यह पता लग जाए कि धूम का अग्नि से अटल सम्बन्ध है। वह बात यह है, कि 'यह (धूम) उसका (=अग्नि का) कार्य है'। और कार्य कारण में यह नियम है, कि 'कारण के अभाव में कार्य का अभाव होता है'। सो यद्यपि हम सर्वदेशकालस्थ धूमों को नहीं देख सकते, पर जब हमने धूम और अग्नि का कार्य-कारण-भाव देख लिया, और कार्य-कारण-भाव में यह नियम देख लिया, कि 'कारण के अभाव में कार्य का अभाव होता है' तो सर्वदेशकालस्थ धूम का अग्नि के साथ सहचार ज्ञात होगया॥

अब धूम से अग्नि का अनुमान करने में यदि व्यभिचार की शंका उत्पन्न हो, कि 'रहो उस कुंएं पर धूम, तौ भी वहां हम अग्नि का होना आवश्यक नहीं मानते'। इस शंका की निवृत्ति इस **तर्क** से की जाएगी, 'यदि धूम अग्नि से व्यभिचारी होता, तो अग्निजन्य न होता' पर यह हमारे प्रत्यक्षसिद्ध है, कि धूम अग्निजन्य है। सो यदि धूम को अग्नि से व्यभिचारी मानें, तो धूम और अग्नि का कार्य-कारण-भाव भंग होता है, और धूम अग्नि का कार्य-कारण-भाव प्रत्यक्षसिद्ध है, उसका अपलाप हो नहीं सकता॥

इसी प्रकार जहां २ कार्य से कारण का अनुमान हो, वहां २ व्यभिचार शंका को मिटाकर व्याप्ति का निश्चय कराने वाला कार्य-कारण-भाव-भंगरूप तर्क होगा॥

सो जब दो वस्तुओं में कार्य-कारण-भाव निश्चित होजाए, तो कार्य से कारण का अनुमान यथार्थ होगा। जैसे धूप को देखकर सूर्योदय का अनुमान, चान्दना देखकर चन्द्रोदय का अनुमान, तापमापक में पारे को ९९ से ऊपर चढा हुआ देखकर ताप का अनुमान, नदी में बाढ़ देखकर ऊपर हुई वर्षा का अनुमान, भूमि से फूटते अंकुर को देखकर भूमि में दबे बीज का अनुमान, इत्यादि अनेकों अनुमान होते रहते हैं॥

२—कारण से कार्य का अनुमान करने में यह 'उसका कारण है' इससे व्याप्ति का निश्चय होता है, जैसे—

हर एक कपड़ा आग में जल जाता है।

यह कपड़ा है।

इसलिए आग में जल जाएगा।

यहां अग्नि संयोग हेतु है, जलना साध्य है, सो हमें किसी ऐसी बात का पता लगाना चाहिये, जो अग्निसंयोग और जलने का अटल सम्बन्ध बतलाए, वह बात अग्नि संयोग और जलने का कारण कार्य-भाव है। अग्नि संयोग कारण है, जलना कार्य है। सो यद्यपि सर्व-देश-कालस्थ कपड़ों को आग में जलते देख नहीं लिया, पर यह प्रत्यक्ष देख लिया है, कि आग में कपड़े को जला देने की शक्ति है। इसलिए अग्नि संयुक्त वस्त्र अवश्यमेव जल जाएगा। पर यह स्मरण रहे, जैसा कि कार्य-कारण-भाव के नियमों में पूर्व दिखला आए हैं, 'यह नियत नहीं, कि कारण हो, तो कार्य भी अवश्य हो' 'हां यह नियत है, ''कि कारण सामग्री मिल जाए, तो कार्य अवश्य होता है' इसलिए कारण से कार्य के अनुमान में कारण से अभिप्राय कारणसामग्री से है। कपड़े को जलाने में सामग्री केवल अग्निसंयोग है, इसलिए अग्नि संयोग होते ही कपड़ा

जल जाएगा, यह अनुमान होता है। अंकुर बीजमात्र का कार्य नहीं, किन्तु बीज, नमी वाली भूमि, वायु और प्रकाश मिलकर अंकुरोत्पत्ति के कारण हैं। इसलिए अंकुरोत्पत्ति का अनुमान न केवल बीज से होगा, न ही सूखी भूमि में दबे बीज से होगा, किन्तु उचित वायु प्रकाश में उचित नमी वाली भूमि में दबे बीज से अंकुरोत्पत्ति का अनुमान होगा। इसी तरह अग्नि के जलनेमात्र से धूम का अनुमान नहीं होगा, किन्तु गीले इन्धन के जलने से धूम का अनुमान होगा, क्योंकि धूम गीले इन्धन से ही उत्पन्न होता है। इसी प्रकार जिस अवस्था में मेघ से अवश्यमेव वर्षा होती है, उस अवस्था को देखकर होने वाली वर्षा का अनुमान होता है। इस प्रकार सामग्री से जहां कार्य का अनुमान हो, वहां भी व्यभिचार शंका को मिटाकर व्याप्ति का निश्चायक कार्य-कारण-भाव-भंग-प्रसंगरूपी तर्क होगा। सो जब सामग्री और तत्कार्य का निश्चय होजाए, तो सामग्री से कार्य का अनुमान यथार्थ होगा, जैसे औषधखाने से रोग-निवृत्ति का अनुमान, पानी देने से खेती के बढ़ने का अनुमान, प्रबल चोट द्वारा मर्मस्थानों के छिन्न २ हो जाने पर मनुष्य के मरजाने का अनुमान, इत्यादि अनुमान होते हैं। मनुष्य के कार्यों का बहुत बड़ा भाग इसी अनुमान के सहारे पर चल रहा है। हम जो फल चाहते हैं, उसकी सामग्री संपादन करते हैं। खाने पीने के लिए खाने पीने की सामग्री, रहने के लिए घर, समय देखने के लिए घड़ियां, कारखाने चलाने के लिए यन्त्र, शत्रु के ध्वंस के लिए बारूद संपादन करते हैं, और नित्य नए २ आविष्कार इसी अनुमान के सहारे पर होते हैं। क्योंकि जब यह बात समझ में आगई, कि इस पदार्थ में अमुक २ शक्ति है,

और जब यह उस दूसरे पदार्थ के साथ इतने परिमाण में संयुक्त होता है, तो इससे अमुक वस्तु बन जाती है, तो फिर मनुष्य अपनी बुद्धि से इसी अनुमान के द्वारा नए २ आविष्कार करने में समर्थ हो जाता है ॥

३-'ये दोनों उस एक के कार्य हैं' का उदाहरण। जैसे लाहौर में अब बिजली के लैम्प सड़कों दुकानों और घरों में लगे हैं, जिनको एक ही कारखाने से बिजली मिलती है। अब मणिराम की दुकान का जब लैम्प जलता है, तो वह उसी समय अनुमान कर लेता है, कि ठंडी सड़क के सारे लैम्प जल रहे हैं। यहां मणिराम के लैम्प का जलना ठंडी सड़क के लैम्पों के जलने का न कार्य है न कारण है, तौ भी वह अपने लैम्प के जलने से दूसरे लैम्पों के जलने का अनुमान कर लेता है, और वह अनुमान यथार्थ भी होता है, इसलिए कि उन दोनों का जलना एक बिजली के कार्य हैं। इसी तरह कमलों को खिला हुआ देखकर दिन का अनुमान इसलिए होता है, कि दिन और कमलों का खिलना दोनों सूर्योदय के कार्य हैं ॥

४-'यह उसका समवायी है' का उदारण-लोहे को देखकर जो कठिन स्पर्श का अनुमान होता है, वह इसलिए, कि लोहा कठिन स्पर्श का समवायी है। कठिन स्पर्श गुण है, गुणगुणी का समवाय सम्बन्ध होता है, गुणी उस गुण का समवायी और गुण उस गुणी में समवेत कहलाता है। जब विलक्षण स्पर्श से लोहे का अनुमान होता है, तब 'यह उसमें समवेत है' इससे व्याप्ति का निश्चय होता है ॥

५-'यह उसका एकार्थ समवायी है' का उदाहरण-जैसे रूप को देखकर स्पर्श का अनुमान। क्योंकि जिस द्रव्य में

रूप होता है, उसमें स्पर्श अवश्य होता है। रूप और स्पर्श दोनों एक द्रव्य में समवाय सम्बन्ध से रहते हैं, इसलिए दोनों का एकार्थ समवाय है। रस को चखकर रूप का अनुमान, क्योंकि जिस द्रव्य में रस पाया जाता है, उसमें रूप अवश्य होता है॥

६–'यह उसका संयोगी है' का उदाहरण–जैसे—

१–जो पानी गर्म होता है, वह अग्नि से संयुक्त होता है।
यह पानी गर्म है।
इसलिए अग्नि से संयुक्त है।

२–हर एक नहर रजबाहों से संयुक्त होती है।
यह एक नहर है।
इसलिए यह रजबाहों से संयुक्त है।

७–'यह उसका विरोधी है' का उदाहरण–जैसे–विलक्षण फुंकार मारता हुआ सर्प झाड़ियों में छिपे नेउले का अनुमान कराता है॥

हैं तो ये सातों ही व्याप्ति के निश्चायक। पर इन सब में से मुख्यतया व्याप्ति का निश्चायक कार्य-कारण-भाव ही है। पहले तीनों में तो कार्य-कारण-भाव कहा ही है। अगले चारों अर्थात् समवाय, एकार्थ समवाय, संयोग और विरोध में भी वस्तुगत्या कार्य-कारण-भाव ही यथार्थ पता देता है। कार्य द्रव्यों के गुण सब कार्य होते हैं, इसलिए समवायी और एकार्थ समवायी में भी कार्य-कारण-भाव व्याप्ति का निश्चायक है। भार हर एक वस्तु में अपने अवयवों का होता है, इसलिए घने अवयवों वाली में भार अधिक और विरले अवयवों वाली में भार न्यून होता है। सो भार अवयवों के भार का कार्य है,

लोहा घने अवयवों वाला होता है, इसलिए भारी होता है॥ इससे स्पर्श के अनुमान में भी यह कार्य-कारण-भाव है, कि रस उन्हीं वस्तुओं का कार्य है, जो स्पर्श वाली हैं। संयोग में भी गर्मी अग्नि का ही कार्य है। विरोध में भी शत्रु को देखकर कुपित हुए सर्प का ऐसा विलक्षण फुंकार कार्य है। इसलिए सब से बड़ा भरोसा व्याप्ति का कार्य-कारण-भाव के निश्चय पर है। सो जितना कार्य कारण भाव का यथार्थ ज्ञान पुरुष को होता है, उतना ही उसका अनुमान ज्ञान बढ़ता है, और यथार्थ होता है॥

पर कार्य कारण भाव के निश्चय में बड़ी सावधानी चाहिये। यह बात प्रतिदिन सब लोग देखते रहते हैं, कि हरएक कार्य का कोई कारण होता है, और बिना कारण के कभी कार्य नहीं होता। रोटी अपने आप नहीं पकती, उसका कोई कारण है, और उस कारण के बिना कभी भी नहीं पकती। कपड़ा अपने आप नहीं बनता, उसका कोई कारण है, और उस कारण के बिना वह कभी नहीं बनता। मींह अपने आप नहीं बरसता, उसका कोई कारण है, और उस कारण के बिना वह कभी नहीं बरसता, पढ़ना लिखना कभी अपने आप नहीं आता, उसका कोई कारण है, और उस कारण के बिना कभी नहीं आता। इस प्रकार प्रतिदिन प्रतिक्षण देखते २ मनुष्य को यह निश्चय होजाता है, कि सृष्टि में जितनी घटनाएं होती है, ये कार्य-कारण-भाव के सहारे पर होती हैं, और कार्य-कारण-भाव के नियम अटल हैं, न कोई इनको टाल सकता है, न इनमें कभी उलट पलट होता है। इसलिए अब यह जो निश्चय होगया है, कि हरएक घटना का कोई कारण अवश्य होता है, इससे कार्य-कारण-भाव के विषय में लोग कभी मनमानी

कल्पनाएं भी कर लेते हैं। जैसे साधारण लोग मानते हैं, कि किसी काम को आरम्भ करने के समय कोई पास से छींकदे, तो वह काम पूरा नहीं होता। जाते समय आगे से कोई आग लेकर मिले, तो हानि होती है। अब देखिये कि एक स्त्री रोटी पकाने लगी है,पास से किसी ने छींक दिया। अब रोटी पकाने की सामग्री तो अग्नि, तवा, आटा आदि है। इनके यथायोग्य संयोग से रोटी अवश्य पकेगी, क्योंकि सामग्री के होने पर कार्य अवश्य उत्पन्न होता है। छींक न तो कारण सामग्री में से है, न प्रतिबन्धक सामग्री में से है, न यह अग्नि को बुझाती है, न तवे वा आटे को उड़ाती है, न पकाने वाली के हाथों को जकड़ती है, इसलिए प्रतिबन्धक नहीं हो सकती। इसलिए छींक का रोटी पकने के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। इसी तरह आग का गति के साथ कोई सम्बन्ध नहीं, सम्भव हो सकता है, कि एक दो बार आग मिलने से किसी का काम न हुआ हो,पर आग मिलने का उन कार्यों के साथ जब कोई सम्बन्ध नहीं,तो इससे यह अनुमान कदापि नहीं हो सकता, कि काम नहीं होगा वा हानि होगी। इस तरह बहुत से भ्रम लोगों को कार्य-कारण-भाव का यथार्थ ज्ञान न होने से होरहे हैं। वहां सावधानी से कार्य-कारण-भाव को देखोगे, तो तुम उन भ्रमों (वहमों) से बचे रहोगे। ये तो हैं साधारण लोगों के भ्रम, पर बड़े २ बुद्धिमानों को एक दूसरे ही प्रकार के भ्रम हो जाते हैं। जैसे परमाणुओं के खण्डन में प्रायः यह अनुमान किया जाता है॥

सब गोल वस्तुएं नाशवान् हैं।

परमाणु गोल हैं।

इसलिए नाशवान् हैं।

यहां हेतु जो गोल है, उसका नाश से व्यभिचार तो कहीं नहीं देखा जाता, क्योंकि वस्तुतः जितनी गोल वस्तुएं देखने में आती हैं, वे सब नाश होती हैं। पर प्रश्न यह है, कि गुलाई का नाश से कोई अटल सम्बन्ध भी है, कि नहीं? जब इस बात पर ध्यान दोगे, तो कोई सम्बन्ध नहीं प्रतीत होगा। गोल वस्तुएं इसलिए नष्ट नहीं होतीं, कि वे गोल हैं, किन्तु इसलिए नष्ट होती हैं, कि सावयव हैं। किसी द्रव्य की उत्पत्ति अवयवों के संयोग से होती है, और नाश अवयवों के विभाग से होता है। जब निरवयव के कोई अवयव नहीं, तो अवयव-विभाग कैसा, और जब अवयव विभाग न हुआ तो नाश कैसा। सो गुलाई का और नाश का कार्य-कारण-भाव नहीं, इसलिए गोल होना नाश होने का हेतु नहीं बन सकता, हां अवयव विभाग और नाश का कार्य कारण भाव है, इसलिए सावयव होना हेतु बन सकता है। क्योंकि सावयव में ही अवयव विभाग होता है। सावयव होने से ही गोल वस्तुएं भी नष्ट होती हैं, सावयव होने से ही चपटी त्रिकोण पञ्चकोण आदि भी नष्ट होती हैं, जो हेतु त्रिकोण में नाश का है, वही गोल में है, और वह सावयवता है, न कि गुलाई। इस तरह सावधानी के साथ कार्य-कारण-भाव का पता लगाने से पुरुष भूल से बच जाता है, और उसका अनुमान ऐसे सीधे मार्ग पर जापड़ता है, कि उससे दूसरों की अपेक्षा वह बहुत अधिक लाभ उठाता है। जैसा कि एक ओषधि एक रोग को दूर करती है, अब ओषधि में यदि उस रोग को दूर करने का कोई एक तत्त्व ही है, तो जो वैद्य यह पता लगा लेगा, कि वस्तुतः इस रोग का नाशक यह तत्त्व ही है, वह उस सारी ओषधि को खिलाने वा पिलाने

के स्थान बहुत छोटीसी मात्रा में उससे वह तत्त्व निकाल कर रखलेगा, और उसको बर्तेगा, इससे अतिरिक्त जिस २ द्रव्य मे वह अंश निकल सकता है, उन सब में से निकाल कर औषध बना लेगा, इसी बात पर ध्यान देने से रसायन और विज्ञान शास्त्र की वृद्धि हुई है ॥

अनुमान के तीन भेद — अनुमान तीन प्रकार का होता है। **पूर्ववत्, सामान्यतोदृष्ट, शेषवत्।** जब ऐसी वस्तु की सिद्धि करते हैं, जो हमने पहले अपने विशेषरूप में देखी हुई है, तो पूर्ववत् अनुमान कहलाता है, जैसे हम अनुमान से अग्नि का पता लगाते हैं, तो अग्नि वह वस्तु है, जो हमने पहले देखी हुई है। और जब ऐसी वस्तु की सिद्धि करते हैं, जो हमने अपने विशेषरूप में पहले कभी नहीं देखी, किन्तु उस जैसी वस्तुएं देखी हैं, तब अनुमान सामान्यतोदृष्ट होता है। जैसे—भूमि का गोल होना कभी हमने प्रत्यक्ष नहीं देखा, पर यह हमने पता लगा लिया है, कि सूर्य के चारों ओर चक्र लगाती हुई पृथिवी जब सूर्य और चन्द्र के ठीक मध्य में आजाती है, तो चन्द्र पर पृथिवी की छाया पड़ने से चन्द्रग्रहण होता है। अब वह छाया गोल प्रतीत होती है, इससे हम अनुमान करते हैं, कि भूमि गोल है। अनुमान द्वारा इसकी सिद्धि इस प्रकार करेंगे:—

जिस वस्तु की छाया गोल हो, वह आप भी गोल होती है।

चन्द्र पर भूमि की छाया गोल पड़ती है।

इसलिए भूमि गोल है।

यहां हमने सिद्ध किया है, भूमि का गोल होना, पर यह हमने आंखों से कभी नहीं देखा। हां भूमि जैसी वस्तुएं अनेकों देखी हैं, जैसे नारंगी, गेंद, लोहे का गोला, मट्टी का गुल्ला इत्यादि। और यह भी प्रत्यक्ष देखा है, कि छाया गोल उसी की होती है, जो आप गोल हो, इस समानता से हमने भूमि का गोल होना सिद्ध किया है॥

सामान्यतोदृष्ट अनुमान इस नियम पर बनते हैं, 'जिन के विशेषों का कार्य-कारण-भाव होता है, उनके सामान्यों का भी कार्य-कारण-भाव होता है' जैसे—नारंगी में और गोल छाया में हम कार्य-कारण-भाव देखते हैं, तथा गेंद और गोल छाया में, और लोहे के गोले और गोल छाया में भी कार्य-कारण-भाव देखते हैं। तो अब हम गोल विशेष नारंगी आदि का गोल छाया से कार्य-कारण-भाव देखकर कार्य-कारण-भाव का नियम विशेषों से हटाकर सामान्य पर लेजाते हैं, कि गोल वस्तु और गोल छाया का कार्य-कारण-भाव है। दूसरा दृष्टान्त—मट्टी के बर्तनों की कारीगरी का कारीगर कुम्हार के साथ कार्य कारण भाव देखते हैं, लोहे के हथियारों की कारीगरी का कारीगर लोहार के साथ कार्य-कारण-भाव देखते हैं, भूषणों की कारीगरी का कारीगर सुनार के साथ कार्य-कारण-भाव देखते हैं, तो अब हम विशेष कारीगरी का विशेष कारीगर से कार्य-कारण-भाव देखकर कार्य-कारण-भाव का नियम विशेषों से हटाकर सामान्य पर लेजाते हैं, कि 'कारीगरी और कारीगर का कार्य-कारण-भाव है' तब जगत् की कारीगरी देखकर जिस कारीगर का अनुमान करते हैं, वह ईश्वर सिद्ध होता है। जितने अतीन्द्रिय पदार्थ हैं, वे सब इस सामान्यतोदृष्ट अनुमान से सिद्ध होते हैं॥

शेषवत् वह होता है, जब किसी साधारण चिन्ह से एक बार बहुतसी वस्तुओं का स्मरण आजाए, तो फिर उनमें से अनुमान द्वारा दूसरी वस्तुओं को हटा २ कर जो शेष बच रहा है, उसका अनुमान करना। जैसे—

यह सिक्का सोने का है वा ताम्बे का है।

पर यह सोने का नहीं है (क्योंकि इसकी कस सोने की नहीं है)।

इसलिए तांबे का है।

रोगों का निदान करने में यह अनुमान बहुत काम देता है। जब कोई वैद्य किसी रोगी में बहुत से रोगों के साधारण चिन्ह देखता है, तो उनमें से हरएक की परीक्षा करके उनमें से एक २ करके सबको हटाकर शेष बचे का निश्चय कर, उसकी चिकित्सा करता है॥

अनुमितानुमान—जब एक वस्तु का अनुमान करके उससे किसी दूसरी वस्तु का अनुमान किया जाए, तो उसको अनुमितानुमान कहते हैं। जैसे नदी के पानी का विलक्षण शोर सुनकर नदी में आई बाढ़ का अनुमान, उस बाढ़ से ऊपर हुई वृष्टि का अनुमान। इसी तरह आगे भी अनुमान होसकता है, वृष्टि से मेघ का अनुमान, मेघ से मानसून का अनुमान इत्यादि। यह ध्यान रखना चाहिये, कि अनुमितानुमान कोई अनुमान का प्रकार नहीं, जैसे कोई नेत्र से पहले एक पैदल सेना को देखे, फिर उनके पीछे घुड़सवारों को देखे, फिर उनके पीछे तोपखाने को देखे, तो यहां जैसा पहला प्रत्यक्ष, वैसा दूसरा, वैसा ही तीसरा है, प्रत्यक्ष में कोई भेद नहीं आया।

इसी तरह अनुमितानुमान में जैसा पहला अनुमान, वैसा दूसरा, वैसा तीसरा, इनमें कोई भेद नहीं आया, सो अनुमितानुमान भी अनुमान ही है, किन्तु इसको अलग वर्णन इसलिए किया है, कि यह भी ध्यान रखना चाहिये, कि मनुष्य की बुद्धि इतनी दूर पहुंचने वाली है, कि कोई एक तनिकसा चिन्ह पाकर अनेकों बातों का पता लगा लेती है। प्राचीन तत्त्वों का अनुसन्धान करने वाले इस अनुमितानुमान से बड़ा काम लेते हैं। इस समय भूमि की खुदाई से दबे हुए जन्तुओं की जो ठठरियां निकलती हैं, उनमें से बहुत से ऐसे जन्तु हैं, जो अब भूमि पर नहीं रहे, तौ भी इस विद्या के विद्वान् उनकी ठठरियों से ही उनके विषय की सारी बातें जान लेते हैं, और एक ही ऐतिहासिक बात का ठीक पता लग जाने से कई संदिग्ध बातों को हल कर लेते हैं॥

अनुमान वाक्य में स्वतन्त्रता।

अब यह जानना चाहिये, कि ऊपर जो बतलाया है, कि दूसरे को समझाने के लिए इस ढंग से वाक्य रचना करनी चाहिये। यह इसलिए है, कि इस ढंग से दूसरे को आसानी से साध्य वस्तु का निश्चय करा सकते हैं, पर जब तुम किसी के साथ बात चीत करते हो, तो किसी को इस बात के लिए बाध्य नहीं कर सकते, कि वह इसी ढंग पर वाक्यरचना करे, यह उसको अधिकार है, जैसा चाहे, वाक्य रचना करे। हो सकता है, कि वह पूर्वोक्तरीति से पञ्चावयव वाक्य पूरा कहे, जैसे—

उस कुंए पर अग्नि है। (प्रतिज्ञा)

क्योंकि वहां धूम है। (हेतु)

जहां २ धूम होता है, वहां २ अग्नि होती है।
जैसा रसोई में (उदाहरण)
उस कुंए पर भी धूम है (उपनय)
इसलिए वहां अग्नि है। (निगमन) ॥

पर यह भी हो सकता है, कि वह पिछले तीनों अवयव कहें। जैसे—
जहां २ धूम होता है, वहां २ अग्नि होती है। (व्याप्ति)
उस कुंएं पर धूम है। (उपनय)
इसलिए वहां अग्नि है। (निगमन) ॥

और यह भी हो सकता है, कि उपनय को व्याप्ति से पूर्व कहे।
उस कुंएं पर धूम है।
जहां २ धूम होता है, वहां अग्नि होती है।
इसलिए वहां अग्नि है ॥

और यह भी हो सकता है, कि व्याप्ति वाक्य में व्याप्य व्यापक को आगे पीछे करदे।
वहां अग्नि अवश्य होती है, जहां धूम होता है।
उस कुंएं पर धूम है।
इसलिए वहां अग्नि है ॥

यह भी हो सकता है, कि पांचों अवयवों में से पहले ही तीन रक्खे, जैसे—
उस कुंएं पर अग्नि है।
क्योंकि वहां धूम है।
जहां २ धूम होता है, वहां २ अग्नि होती है।

और यह भी संभव है, कि दो ही अवयव रक्खे। जैसे—
उस कुंएं पर अग्नि है।
क्योंकि वहां धूम है।

अथवा—उस कुएं पर धूम है।

इसलिए वहां अग्नि है।

इसलिए वाक्य रचना में किसी को बाध्य नहीं करना चाहिये, कि हमारे ही ढंग पर करो। देखनी केवल यह बात है, कि उसने हेतु, साध्य, और उनके सम्बन्ध का ठीक पता दे दिया है, वा नहीं। ये तीनों शुद्ध हैं, तो अनुमान शुद्ध है, चाहे किसी ढंग पर बोला लिखा जाए, पर यदि इनमें से कोई अशुद्ध है, तो अनुमान अशुद्ध है, चाहे पूरे पांचों अवयव भी रख कर लिखा बोला गया है। जैसे अग्नि के अनुमान में साध्य अग्नि है, धूम हेतु है, व्याप्ति सम्बन्ध है। पञ्चावयव वाक्य और त्र्यवयव वाक्य में तो ये तीनों स्पष्ट दिखला दिये गए हैं। दो अवयवों वाले वाक्य में भी तीनों पाए जाते हैं। जैसे उस कुएं पर धूम है। इसलिए वहां अग्नि है। यहां स्पष्ट है, कि धूम से हम अग्नि सिद्ध कर रहे हैं, इसलिए धूम तो हेतु है, अग्नि साध्य है। ये दोनों तो हमने मुख से ही कह दिये हैं, कि उस कुएं पर धूम है, इसलिए वहां अग्नि है। किन्तु व्याप्ति हमने मुख से नहीं कही, तथापि जब हम यह कहते हैं, कि उस कुएं पर धूम है, इसलिए वहां अग्नि है, तो हमारा अभिप्राय स्पष्ट है, 'कि जहां कहीं धूम होता है, वहां अग्नि अवश्य होती है' यही व्याप्ति है। यदि हम 'इसलिए' भी न कह कर इसी तरह कहदें, कि देखो वह धूम है, वहां अग्नि होगी, तो भी हमारा अभिप्राय यही है, कि जहां२ धूम होता है, वहां२ अग्नि होती है॥

व्याप्ति के दो भेद — ऊपर जो साध्य-साधन की व्याप्ति कही है, उसके दो भेद होते होते हैं। एक अन्वयव्याप्ति दूसरी

व्यतिरेकव्याप्ति । व्याप्ति से दो बातें दिखलानी अभिप्रेत होती हैं । (१) एक तो हेतु और साध्य का सहचार, अर्थात् जहां यह हेतु पाया जाएगा, वहां यह साध्य अवश्य पाया जाएगा । इसको इस तरह दिखलाते हैं–'जहां २ धूम होता है, वहां २ अग्नि होती है' यही अन्वयव्याप्ति है । (२) दूसरा साध्य और हेतु का व्यभिचारा-भाव–अर्थात् जहां यह साध्य नहीं होगा, वहां यह हेतु भी नहीं पाया जाएगा, इसको इस तरह दिखलाते हैं, 'जहां अग्नि नहीं होगी, वहां धूम भी नहीं होगा, जैसे तालाब में' यही व्यतिरेकव्याप्ति है । अन्वयव्याप्ति में हेतु व्याप्य होता है, और साध्य व्यापक, इसलिए हेतु को पहले और साध्य को पीछे बोलते हैं, 'जहां २ धूम होता है, वहां २ अग्नि होती है' । व्यतिरेकव्याप्ति में साध्याभाव व्याप्य होता है, और साधनाभाव व्यापक, इसलिए साध्याभाव को पहले और साधनाभाव को पीछे बोलते हैं,'जहां अग्नि का अभाव होता है,वहां धूम का अभाव होता है' । इस तरह सर्वत्र अन्वयव्याप्ति और व्यतिरेकव्याप्ति से हेतु साध्य के सहचार और व्यभिचाराभाव का निश्चय कराया जाता है । पर यह याद रखना चाहिये, कि जहां लक्षण द्वारा किसी पदार्थ का दूसरे पदार्थों से भेद दिखलाना हो, वहां निरी व्यतिरेकव्याप्ति ही होती है । जैसे—

आत्मा अन्य सब पदार्थों से भेद रखता है ।

क्योंकि चेतन है ।

यहां यह नहीं कह सकते, कि जो २ चेतन हैं, वह २ दूसरों से भेद रखता है । क्योंकि ऐसा कहकर दृष्टान्त क्या दें, आत्मा ही तो दृष्टान्त हो सकता है, और उसी के विषय में अभी निर्णय करने लगे हैं, उसको दृष्टान्त कैसे बनालें । इसलिए यही

कहना होगा, कि जो अन्य सब (=आत्मभिन्न) पदार्थों से भेद नहीं रखता है, वह चेतन नहीं है, जैसे पृथिवी । सो यहां केवल व्यतिरेकव्याप्ति ही बन सकती है, ऐसे हेतु को केवल व्यतिरेकी कहते हैं, और जिस में दोनों व्याप्तियां बन जाएं, उसको अन्वयव्यतिरेकी कहते हैं ॥

अनुमान में भूल से बचना और भूल को पकड़ना ।

भूल न करना वा भूल होजाए, तो उसे झट सुधारलेना, यह तो हरएक मनुष्य के लिए स्वार्थानुमान और परार्थानुमान दोनों में आवश्यक है । पर दूसरे की भूल पकड़ने का अवसर दूसरों के साथ बात चीत में होता है, इसलिए पहले बात चीत के भेद दिखलाते हैं ॥

दूसरों के साथ विचार करने का नाम **कथा** है । कथा के दो भेद हैं, **वाद** और **विवाद** । जब दोनों वादियों में से किसी को भी अपनी हारजीत का ख्याल न हो, किन्तु सत्य का निर्णय करना ही अभिप्रेत हो, तो उनकी बात-चीत को वाद कहते हैं, ऐसी बात-चीत प्रायः गुरु शिष्य में वा सत्यप्रिय पुरुषों में होती है । पर सत्यासत्य के निर्णय की परवाह न करके दूसरे को किसी न किसी तरह जीत लेना है, इस अभिप्राय से जो बात-चीत होती है, उसको विवाद कहते हैं । उसके दो भेद हैं, **जल्प** और **वितण्डा** । जब प्रतिवादी अपने सिद्धान्त के मण्डन करने और वादी के सिद्धान्त का खण्डन करने के लिए छल-बल करता है, तो उसकी कथा जल्प कहलाती है, और जब छलबल से वादी के पक्ष का खण्डन ही करता है, अपना पक्ष कुछ नहीं स्थापन करता, तब उसकी कथा को

वितण्डा कहते हैं। नैयायिक को चाहिये, कि स्वयं जल्प वितण्डा कभी न करे। सत्यासत्य का निर्णय करना अपना ही कर्तव्य समझे, छलबल को कभी निकट न आने दें, और अपनी भूल को सुधारने के लिए सदा तय्यार रहे, यही न्याययुक्त मार्ग है। स्वयं विवाद में कभी न पड़े, सो यदि प्रतिवादी विवादी हो, विशेषतः वैतण्डिक हो, तो या तो उसके साथ बात-चीत करे न, और करे, तो धीर गम्भीर बनकर उससे उसकी भूलें मनवा २ कर उसके मुख से यथार्थ बात कहलाले। पर यह स्मरण रखना चाहिये, कि भूल मनुष्य से अज्ञान के कारण भी होती है, पर छल मनुष्य जान-बूझकर ही करता है, सो भूल तो वाद में भी होती है, और छल आदि विवाद में होते हैं। नैयायिक का काम भूल को पकड़कर जितला देना और मनवा देना है, 'यह तुमने छल किया है' ऐसा वाक्य प्रयोग नहीं करना चाहिये। अस्तु, अब हम भूलों के स्थान बतलाते हैं॥

ऊपर लिख चुके हैं, कि अनुमान में वाक्य प्रयोग जैसा चाहे, करे, पर अनुमान में तीन बातें अवश्य आजानी चाहियें, हेतु, साध्य और व्याप्ति॥

इनमें से हेतु कहने में ये भूलें होती हैं—हेतु विरुद्ध हो। जैसे पृथिवी अनादि है, क्योंकि सावयव है। यहां सावयव होना अनादिता का विरोधी है, क्योंकि सावयव वस्तु वही हो सकती है, जो अवयवों के संयोग से बने, और जो किसी समय बने, वह सादि होगी, न कि अनादि। इसी प्रकार आत्मा नित्य है, क्योंकि उत्पत्ति वाला है। यह विरुद्ध हेतु है, उत्पत्ति वाला होना नित्यता का विरोधी है॥

हेतु संदिग्ध हो। जैसे—वहां अग्नि अवश्य है, क्योंकि वह

वहां धुआंसा दीखता है। यहां धूम का पूरा निश्चय नहीं, इस लिए चाहे वहां अग्नि हो ही, पर इस संदिग्ध हेतु से वहां अग्नि की सिद्धि नहीं हो सकती। हां ऐसे स्थलों में पणबन्ध से (शर्तिया) साध्य की सिद्धि होती है। यदि वह धूम है, तो वहां अग्नि है॥

हेतु असिद्ध हो। जैसे कुहर को देखकर कोई कहे, कि वहां अग्नि है, क्योंकि वहां धूम है॥ यहां यह उत्तर होगा, कि तुम जिस को धूम बतलाते हो, वह धूम नहीं है। अथवा घोड़े के पेट में दो मेधे हैं, क्योंकि वह जुगाली करता है,यहां जुगाली करना हेतु असिद्ध है, जब तक इसको सिद्ध न करले, इसको हेतुरूप में नहीं कह सकता। आत्मा विनाशी है,क्योंकि उत्पत्ति वाला है। यहां उत्पत्ति वाला होना यह हेतु असिद्ध है। हेतु चाहे सच्चा भी हो, पर यदि प्रतिवादी उसको न माने,तो उसके लिए वह असिद्ध ही माना जाता है। जब तक पहले उसको सिद्ध न कर लिया जाए, तब तक उससे साध्य की सिद्धि नहीं कर सकते। जैसे कोई कहे, कि पृथिवी गोल है, क्योंकि (ग्रहण के समय चन्द्र पर) उसकी छाया गोल पड़ती है। अब यहां यदि प्रतिवादी उसको पृथिवी की छाया मानने से इन्कार करदे, तो जब तक पहले उसको वह पृथिवी की छाया सिद्ध करके न मनवाली जाए,तब तक उसके लिए यह हेतु असिद्ध है॥

हेतु अप्रयोजक हो। हेतु अप्रयोजक वह होता है, जिसका साध्य के साथ कोई सच्चा सम्बन्ध न हो। जैसे–परमाणु विनाशी हैं, क्योंकि गोल हैं। यहां गुलाई का विनाशी होने के साथ कोई सच्चा सम्बन्ध नहीं। ऐसा कोई तर्क नहीं, जिससे हम यह निश्चय कर सकें, कि वे वस्तुएं नष्ट इसलिए होती हैं, कि गोल

है। ऐसा हेतु जिसका साध्य के साथ सम्बन्ध का निश्चायक कोई तर्क न हो, उसको अप्रयोजक कहते हैं॥

हेतु सत्प्रतिपक्षित हो। एक हेतु से जिस साध्य की सिद्धि की है, यदि किसी दूसरे हेतु से उसके विरुद्ध सिद्ध होसके, तो वह पहला हेतु सत्प्रतिपक्षित होता है। जैसे कोई कहे, कि परमाणु अनित्य है, क्योंकि जड़ है। इसके विरुद्ध यह अनुमान करे, कि परमाणु नित्य है, क्यों निरवयव है। तो वह पहला हेतु सत्प्रतिपक्षित होगा। इसलिए उससे साध्य की सिद्धि नहीं होगी। सत्प्रतिक्षित होने से दोनों ही साध्य रुक जाते हैं, जब तक किसी एक हेतु को दूषित सिद्ध न किया जाए, तब तक दोनों रुके रहते हैं। इसलिए ऐसे स्थलों में जो सिद्धान्त विरुद्ध अनुमान होता है, उसका हेतु अवश्य अप्रयोजक होता है। सो यह पूछना चाहिये, कि जड़ता और अनित्यता का क्या ऐसा सम्बन्ध है, जिससे हम जड़ होने के कारण अनित्य मानलें, तो ऐसा सम्बन्ध कोई भी नहीं निकलेगा, इसलिए अनित्यता का साधक जड़त्व हेतु अप्रयोजक होने से जब साधक न रहा, तब दूसरा नित्यता का साधक निरवयवत्व हेतु बिना रोक प्रवृत्त होगया॥

साध्य में भूलें।

साध्य प्रत्यक्ष से बाधित हो। जैसे—

कोई भी द्रव्य उष्ण नहीं है।

अग्नि भी द्रव्य है।

इसलिए उष्ण नहीं है।

यहां अग्नि का उष्ण न होना साध्य है। यह प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है। स्पर्श करने से अग्नि उष्ण अनुभव होता है॥

व्याप्ति की भूलें।

व्याप्ति की भूलें भी वस्तुतः हेतु की भूलें ही होती हैं, पर जहां अनायास यह प्रतीत होता हो, कि यहां व्याप्ति नहीं बन सकती है, वहां व्याप्ति की भूल दिखलाना आसान होता है, इसलिए हमने इसे व्याप्ति की भूलें लिखा है॥

१–हेतु का व्यभिचारी होना। जैसे यह गौ है, क्योंकि यह सींगों वाली है। यहां हेतु व्यभिचारी है, सींगों वाली निरी गौएं ही नहीं होतीं, भैंस बकरी हरिण आदि और भी बहुत से पशु सींगों वाले होते हैं। अतएव यहां हेतु की साध्य के साथ व्याप्ति नहीं बन सकती। हम यह नहीं कह सकते, कि जो २ सींगों वाला पशु हो, वह २ गौ होती है। यहां तो सींगों वाले भैंस आदि को हम अच्छी तरह जानते हैं, इसलिए भूल स्फुट प्रतीत होती है। पर जहां इस प्रकार भूल स्फुट प्रतीत नहीं होती, वहां धोखा हो जाता है। जैसे—

१–मारवाड़ी धनी होते हैं।
रामदास मारवाडी हैं।
इसलिए धनी है।

२–राजपूत शूरबीर होते हैं।
रणसिंह राजपूत है।
इसलिए रणसिंह शूरबीर है।

यद्यपि मारवाड़ी प्रायः धनी और राजपूत प्रायः शूरबीर हैं, तथापि सारे के सारे नहीं। मारवाड़ी निर्धन और राजपूत कायर भी हैं। इसलिए यहां व्याप्ति नहीं बन सकती, कि जो २ मारवाड़ी हैं, वह २ धनी है, तथा जो २ राजपूत हैं, वह २ शूरबीर है॥

व्यभिचारी हेतु कई तरह पर बोला जाता है। जैसे—

कई व्यापारी ऋण नहीं लेते।

कई व्यापारी बड़ा लाभ उठाते हैं।

इसलिए बड़ा लाभ उठाने वाले ऋण नहीं लेते।

यहां बड़ा लाभ उठाने वालों के ऋण न लेने का हेतु जो बतलाया है, वह है व्यापारी होना। पर इस हेतु की ऊपर व्याप्ति नहीं दिखलाई, क्योंकि व्याप्ति होती है, सबके साथ सम्बन्ध। पर ऊपर जो कहा है, कि कई व्यापारी ऋण नहीं लेते, इससे यह स्फुट है, कि कई ले भी लेते हैं। इसलिए यह हेतु अव्यभिचारी नहीं। जहां समग्र हेतु की साध्य के साथ व्याप्ति न दिखलाई हो, वह हेतु व्यभिचारी होता है। इसी तरह—

सब लिखारी मनुष्य हैं।

सब ज़मींदार मनुष्य हैं।

इसलिए सब ज़मींदार लिखारी हैं।

यहां हेतु मनुष्य है, उसकी साध्य जो लिखारीपन है, उसके साथ व्याप्ति कहीं नहीं आई, क्योंकि यह नहीं कहा, कि सब मनुष्य लिखारी हैं, उलटा यह कहा है, कि सब लिखारी मनुष्य हैं। इसलिए लिखारी व्याप्य है, और मनुष्य व्यापक है। पर चाहिये साध्य व्यापक और हेतु व्याप्य। यह याद रक्खो, कि वाक्य में 'जो' शब्द जिसके साथ जुड़े, वह उद्देश्य होता है, और 'वह' शब्द जिसके साथ जुड़े, वह विधेय होता है। जैसे सब लिखारी मनुष्य हैं। इस वाक्य को 'जो, वह' शब्दों से प्रकट करें, तो यूं कहेंगे, कि जो २ लिखारी है, वह २ मनुष्य है। सो यहां लिखारी उद्देश्य हुआ, और मनुष्य विधेय हुआ। यह कभी नहीं कह सकते, कि जो २ मनुष्य है, वह २ लिखारी है। इसलिए

मनुष्य उद्देश्य और भिखारी विधेय नहीं हो सकता। और यह भी याद रक्खो, कि वाक्य में पहले उद्देश्य रक्खा जाता है, पीछे विधेय। जैसे भिखारी पहले रक्खा है, और मनुष्य पीछे, सो मनुष्य विधेय है। अब यह दूसरी बात जानों, कि जहां हेतु विधेय होगा, वहां व्यभिचारी हो जाएगा, क्योंकि विधेय व्यापक होता है, और हेतु वह होता है, जो व्याप्य हो, न कि व्यापक॥

व्यतिरेक व्याप्ति को उलट देना। जैसे—

सब झूठे पापी होते हैं।

रामदास झूठा नहीं है।

इसलिए वह पापी नहीं है।

यहां व्याप्ति वाक्य में झूठे व्याप्य और पापी व्यापक है। इसलिए अन्वयव्याप्ति तो इस प्रकार होगी, कि जो २ झूठा है, वह २ पापी है। व्यतिरेकव्याप्ति इससे उलटी यूं होगी, 'जो पापी नहीं, वह झूठा नहीं'। इस व्याप्ति से यह सिद्ध हो सकता है, कि रामदास पापी नहीं इसलिए झूठा नहीं, यह सिद्ध नहीं होता, कि रामदास झूठा नहीं, इसलिए पापी नहीं। क्योंकि व्यतिरेकव्याप्ति तो यह बनी है, 'जो पापी नहीं, वह झूठा नहीं' न कि 'जो झूठा नहीं, वह पापी नहीं'। पर परिणाम ऐसी ही व्याप्ति बना कर निकाला गया है॥

फुटकल भूलें।

हेतु, साध्य और व्याप्ति सम्बन्धी भूलें कहदी हैं। अब कुछ फुटकल भूलें बतलाएंगे, ये भूलें भी होती हैं, और धोखे भी होते हैं, जब कि जल्पवितण्डा में पुरुष जानकर इनका

प्रयोग करता है । तथापि जैसा कि ऊपर कहा है, नैयायिक का काम उसको भूल सिद्ध करना ही है । हां जब स्फुट प्रतीत होरहा हो, कि प्रतिवादी लोगों की आंखों में धूल डालना चाहता है, तब उसका धोखा ऐसे ढंग से स्फुट करना चाहिये, जिस से लोगों पर उसकी धोखेबाजी प्रकट होजाए, किन्तु स्वयं उसको धोखा न कहे । वे भूलें ये हैं—

निरे दृष्टान्तों से साध्य की सिद्धि करना । जैसे कई लोग स्त्री शिक्षा के विरुद्ध यह कहा करते हैं, कि अमुक स्त्री पढ़ी लिखी थी, उसने एक पुरुष को अनुचित प्रेम का पत्र लिखा अमुक भी पढ़ी लिखी थी, उसने भी लिखा, सो स्त्रियों को शिक्षा दोगे, तो वे पत्र ही लिखा करेंगी, इसलिए उनको शिक्षा नहीं देना चाहिये । यहां उत्तर यह है, कि पहले तो तुम उससे इसका प्रमाण मांगो, क्योंकि प्रायः लोग बिना किसी प्रमाण के उद्वेग में आकर ऐसी बातें कह डालते हैं । दूसरा यह उत्तर दो, कि मान भी लिया जाए, कि ऐसा हुआ है, तो इससे क्या यह सिद्ध होगया, कि सभी ऐसी हो जाएंगी । क्या पढ़ी लिखीं स्त्रियें बड़ी २ धर्ममूर्ति नहीं हो चुकीं । जैसे (यहां बहुत सी प्राचीन स्त्रियों के उदाहरण दे जाने चाहिये)। और क्या इस समय पढ़ी लिखी स्त्रियें धर्ममूर्ति नहीं है, जैसे (यहां भी बहुत से दृष्टान्त दो)। सो यदि दो चार स्त्रियें अच्छी नहीं निकलीं, तो उसका कारण विद्या नहीं, विद्या की प्रेरणा तो धर्म की ओर होती हैं, प्रायः विद्या सुधार करती है, हां कहीं २ विद्या का बस नहीं चलता, जहां बस नहीं चला, वही तुमने दृष्टान्त दे दिये हैं, ऐसे दृष्टान्त तो पुरुषों में भी हैं, बहुतेरे विद्या पढ़कर सुधर जाते हैं, बहुतेरे पापी भी होते हैं, तो क्या पुरुषों को भी

नहीं पढ़ना चाहिये, आप के मत के अनुसार यदि पढ़ी लिखी दो चार स्त्रियें अच्छी न निकलने के कारण स्त्रियों को विद्या ही नहीं पढ़ाना चाहिये, तो आपकी ऐसी युक्ति के अनुसार किसी को व्यापार भी नहीं करना चाहिये,क्योंकि अमुक२ व्यापारी को घाटा पड़ा है । किसी व्यापारी को ऋण नहीं देना चाहिये, क्योंकि अमुक २ व्यापारी दीवाला निकाल चुके हैं, कोई कारखाना नहीं खोलना चाहिये, क्योंकि अमुक २ कारखाने को आग लग गई थी, इत्यादि प्रकार से निरे दृष्टान्तों से साध्य की सिद्धि करने में जो दोष हैं, वह पूरी तरह समझा देने चाहियें ॥

इसी से मिलते जुलते ढंग से प्रायः लोग अपने पक्ष की सिद्धि किया करते हैं । जैसे—

अमुक जाति के लोग दुराचारी न थे ।

वे पढ़े लिखे न थे ।

इसलिए अनपढ़ लोग दुराचारी नहीं होते ॥

यह याद रक्खो जहां दोनों निषेध वाक्य हों,वहां कोई परिणाम निकल सकता नहीं । यहां ऊपर के दोनों वाक्य निषेधात्मक हैं ॥

जल्प में प्रायः प्रतिवादी विचारणीय विषय को छोड़कर वादी को विषयान्तर में ले जाना चाहता है । वा वादी की बात को हंसी में उड़ाना चाहता है, वा लोगों के भाव को भड़काना चाहता है ॥

एक बार ट्रेन में एक सिक्ख महाशय सिगरट पीने के विरुद्ध बोले रहे थे, एक पीने वाले ने सिगरट पीने का पक्ष लिया, पर झट ही असली विषय को छोड़कर यह कहना आरम्भ कर दिया, सिक्ख शराब पीते हैं, कि नहीं, शराब तो

पिये जाओ, और सिगरट बुरा हो गया। यह विषयान्तर में जाना है, इसी तरह हंसी में बात को उड़ाकर वा लोगों को भड़का कर भी कार्य साधते देखे गए हैं। ऐसे अवसरों पर चाहिये, कि प्रकृत विषय को भूलने न दे, और उसका विषयान्तर में जाना आदि प्रकट करें, और उससे इसका कारण पूछे। सर्वथा वादविवाद में सावधानी से अपने पक्ष का मण्डन और परपक्ष का खण्डन करना चाहिये, और प्रकृत विषय से इधर उधर न जाना चाहिये, न ही प्रतिवादी को जाने देना चाहिये॥

शब्द प्रमाण।

हमारे सारे व्यवहार शब्द द्वारा चलते हैं, हमारे ज्ञान का बहुत बड़ा भाग हमें शब्द द्वारा प्राप्त होता है। हमें अपने माता पिता आदि बहुतसी बातें शब्द द्वारा समझते हैं। गुरु भी शब्द द्वारा ही शिक्षा देते हैं। पूर्व पुरुषों का अनुभव हमें शब्द द्वारा मिलता है। इसलिए शब्द हमारे ज्ञान का बहुत बड़ा साधन है। पर यह स्पष्ट है, कि शब्द द्वारा ज्ञान प्राप्त करने में भूलें भी होती हैं। इसलिए शब्द भी दो प्रकार का है, एक प्रमाण और दूसरा अप्रमाण। प्रमाण शब्द वह है, जिससे यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो। इसलिए आप्त के उपदेश को ही शब्द प्रमाण कहते हैं। और आप्त उसको कहते हैं, जिसने जानने में धोखा खाया न हो, और कहने में धोखा दे नहीं। ऐसा भला पुरुष, जो कभी झूठ न बोले, वह भी जिस विषय में धोखा खाए हुए हो, उस विषय में आप्त नहीं कहलाता। और जो जानता यथार्थ ही हो, पर कहने में धोखा देजाए, वह भी आप्त नहीं कहलाता। इसलिए हरएक पुरुष उसी विषय में आप्त कहलाता है, जिस विषय के जानने में तो

उसे कोई धोखा न लगा हो, और कहने में कोई धोखा दे नहीं, भले पुरुषों में यह बात तो घट जाती है, कि वह किसी को धोखा देते नहीं, पर जानने में धोखा लग उनको भी जाता है, है, इसलिए जब वे कोई ऐसी बात बतलाएं, जिसके जानने में धोखा लगा हो, तो उस विषय में वे आप्त नहीं कहलाएंगे, अतएव उस विषय में उनका वचन प्रमाण नहीं माना जाएगा। वचन की अप्रमाणता का कारण जो जानबूझकर धोखा देना है, यह तो किसी भी भले पुरुष में नहीं होता, पर धोखा लग भले पुरुषों को भी जाता है, बड़े २ महात्माओं को भी लग जाता है, इसलिए एक धर्मात्मा विद्वान् से भी कही हुई वा लिखी हुई बात यदि परिक्षा में प्रमाणविरुद्ध हो, तो वह बात नहीं माननी चाहिये, और इतनेमात्र से उसका आदर भी नहीं घटा देना चाहिये, जिन सत्यवादी महापुरुषों ने अपने अनुभव हमारे लिए लिखे हैं, वे हमारे शिक्षक हैं, हमारे गुरु हैं, हम उनके ऋणी हैं, उनका अनादर करना कृतघ्नता है, वे यतः सत्यवादी थे, भूल को जानकर त्याग देते थे, इसलिए हम भी भूल के त्यागने में उनका अनुसरण ही करते हैं, उलटा भूल का न त्यागना उनके अन्तरीय भाव के विरुद्ध जाना है। पर कई लोग प्राचीनता के इतने पूजक होते हैं, कि प्राचीन कोई बात यदि प्रमाणविरुद्ध भी हो, तो भी उसको हठ से मनवाना चाहते हैं, और जब और कुछ नहीं बन पड़ता, तो पूर्वजों के नाम की विभीषिका देकर चुप कराना चाहते हैं। नैयायिक को चाहिये,कि जहां वह शुद्ध हृदय से पूर्वजों की भूल को पकड़े न रक्खे, वहां दूसरी ओर भूल के निकालने में उनका अनादर भी न करे, और उनके नाम की विभीषिका से न डरे। किन्तु

सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सदा उद्यत रहे। दूसरा यह, कि जो जिस शास्त्र का अपना विषय नहीं, उस विषय में जो कुछ उस शास्त्र का लेख होता है, वह प्रायः दूसरे शास्त्रों के भरोसे पर लिखा जाता है, जैसे कोई स्मृतिकार स्वास्थ्य और आयु वृद्धि के नियम लिखे, तो वह विषय उसका अपना नहीं, अतएव उस विषय को वह दूसरों के भरोसे पर लिखेगा, इसलिए इस विषय में यदि उसका आयुर्वेद से विरोध आए, तो उसका कथन त्याज्य होगा, और आयुर्वेद का मान्य होगा, सारांश यह, कि हरएक शास्त्र की प्रमाणता अपने विषय में ही होती है। आचार के विषय में आचार शास्त्र की और चिकित्सा के विषय में चिकित्सा शास्त्र की प्रमाणता होती है, इसलिए आचारशास्त्र में यदि कोई प्रासंगिक चिकित्सा की बात आजाए, वा चिकित्सा में आचार शास्त्र की बात आजाए, तो चिकित्सा की बात चिकित्सा शास्त्र के और आचार की बात आचार शास्त्र के अनुसार ही प्रमाण वा अप्रमाण होगी॥

शब्द का अनुमान में अन्तर्भाव—शब्द प्रमाण के द्वारा हमें बहुत बड़ा ज्ञान प्राप्त होता है, पर शब्द प्रमाण अनुमान के ही अन्तर्गत हो जाता है। क्योंकि प्रत्यक्ष और अनुमान का जैसे विषयभेद है, कि प्रत्यक्ष का विषय प्रत्यक्ष होता है, और अनुमान का विषय परोक्ष। वैसे अनुमान और शब्द का विषयभेद नहीं। अनुमान का विषय भी परोक्ष होता है, और शब्द का भी परोक्ष होता है। दूसरा—प्रत्यक्ष और अनुमान में जैसे प्रतीति का भेद होता है, वैसा अनुमान और शब्द में कोई

प्रतीति भेद नहीं। प्रत्यक्ष से विषय की साक्षात् प्रतीति होती है, और अनुमान से परोक्ष प्रतीति होती है। पर अनुमान और शब्द में प्रतीति का कोई भेद नहीं। अनुमान से जैसे परोक्ष प्रतीति होती है, वैसे शब्द से भी परोक्ष प्रतीति होती है। अनुमान में जैसे चिन्ह से अर्थ का ज्ञान होता है, इसी प्रकार शब्द में शब्द स्वरूप चिन्ह से अर्थ का ज्ञान होता है, जैसे धूम को देखकर उसी पुरुष को अग्नि का ज्ञान होता है, जिस को धूम और अग्नि के सम्बन्ध का स्मरण आजाए, इसी प्रकार शब्दों से भी उसी को अर्थ की प्रतीति होती है, जिसको शब्द और अर्थ के सम्बन्ध का स्मरण आजाए। शब्द से अर्थ की प्रतीति तो वृत्ति द्वारा होती है, पर अर्थ की प्रतीति होकर भी उसकी सत्यता असत्यता का निश्चय वक्ता के आप्त अनाप्त होने पर होता है। आप्त भी अपने प्रतिपाद्य विषय में ही प्रमाण होता है, विषयान्तर में नहीं। शास्त्रकार भी प्रत्यक्ष और अनुमान से निर्णीत अर्थों को ही शास्त्र में लिखते हैं, और उनमें सन्देह उत्पन्न होने पर प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा उसका निश्चय कराते हैं। इसलिए प्रत्यक्ष को अनुमान के अन्तर्गत मानते हैं। पर यह लौकिक शब्द के प्रामाण्य के विषय में है। वेद के प्रामाण्य का विचार इसका विषय नहीं है॥

उपमान प्रमाण—सादृश्यज्ञान से जो अज्ञातवस्तु का ज्ञान होता है, उसको **उपमान** कहते हैं, जैसे जिस पुरुष ने गवय कभी नहीं देखा, यदि कोई जानकार उसको यह पता दे, कि जैसे गौ होती है, वैसे गवय होता है, तो वह जंगल में गो सदृश व्यक्ति को देखकर यह जान लेता है, कि यह गवय है।

इसी प्रकार किसी वैद्यने नौकर को कहा, कि जंगल से माषपर्णी और मुद्गपर्णी बूटी ले आओ, वह पूछता है, माषपर्णी और मुद्गपर्णी मैंने कभी नहीं देखी, तो उसको वैद्य बतलाता है, कि जैसे माष (उड़द) के पत्ते होते हैं, ऐसे जिसके पत्ते होंगे, उसको माषपर्णी जानना, और जैसे मूंगे के पत्ते होते हैं, वैसे जिसके पत्ते होंगे, उसको मुद्गपर्णी जानना। यह सुनकर वह जंगल में जा माषपर्णी और मुद्गपर्णी ले आता है। इस प्रकार उपमान से भी हम बहुत सी बस्तुओं को जानते हैं, और बतलाते हैं। जैसे रामदेव का घर कम्बो वाड़े में है, उसके घर का मत्था ठीक वैसा बना हुआ है, जैसे जयदेव के घर का मत्था है। इससे वह रामदेव के घर को बिन पूछे जान लेता है। रामदेव इनमें से कौन है? इस प्रश्न के पूछने पर 'वह जो जयदेव की तरह पगड़ी बांधे हुए हैं, वह रामदेव है, अथवा वह जिसके हाथ में जयदेव की छड़ी जैसी छड़ी है, वही रामदेव है, इत्यादि पते देते हैं। यह सब उपमान है। हुलिया भी उपमान होता है। जहां उन्हीं चिन्हों से हम नाम का पता लगाते हैं, कि यह अमुक जन्तु है, वा अमुक पुरुष है, वा अमुक घर है इत्यादि, वह सब उपमान का विषय है। नाम का ज्ञान जैसे सदृश चिन्हों से होता है, वैसे विसदृश चिन्हों से भी होता है, जैसे 'ऊंट से विलक्षण (भारी और मोटी छोटी गर्दन वाला) और नासिका के ऊपर एक सींग वाला गैंडा होता है, यह सुन जंगल में गया पुरुष गैंडे को जान लेता है॥

उपमान का अनुमान में अन्तर्भाव — उपमान भी अनुमान के ही अन्तर्गत है। क्योंकि जैसे गौ है, वैसे गवय होता है, यह सुनकर

बन में जाकर जो गवय को देखा है, वह प्रत्यक्ष ज्ञान है, देख कर जो यह ज्ञान हुआ है, कि इसका नाम गवय है। वह अनुमान है, क्योंकि गो सदृश पशु को गवय कहते हैं, यह पहले जान लिया है। सो अब गौ के सदृश का ज्ञान उसके गवय नाम का चिन्ह है, इसलिए इसका नाम गवय है, यह ज्ञान अनुमिति है ॥

अर्थापत्ति प्रमाण—जब एक बात के कहने से दूसरी बात अर्थ से सिद्ध होजाए, उसको **अर्थापत्ति** कहते हैं, जैसे मेघों के न होने पर वर्षा नहीं होती, यहां अर्थ से सिद्ध है, कि होने पर होती है। हमारी बोलचाल में एक बात के कहने पर जहां अर्थात् कहकर दूसरी बात कह देते हैं, वही अर्थापत्ति का विषय है, जैसे मेघों के न होने पर वर्षा नहीं होती, अर्थात् होने पर होती है। यह हृष्टपुष्ट युवा पुरुष दिन को भोजन नहीं खाता, अर्थात् रात को खाता है। मनुष्य तभी तक देखता है, जब तक आंख खुली होती है, अर्थात् बंद होने (मीचने, सोने) पर नहीं देखता है। इसी प्रकार नियत समय पर नियत कार्य करने वाले जब किसी दिन अपने उस नियत समय पर कोई और कार्य बतलाते हैं, तब अर्थापत्ति से उस नियत कार्य का निषेध सिद्ध होता है। जैसे आज हम घर ही रहेंगे, अर्थात् दौरे नहीं जाएंगे, वा दफ्तर नहीं जाएंगे। आज हम इस समय पर्चे देखेंगे, अर्थात् सैर नहीं जाएंगे। नियत कार्य को दूसरे समय पर बतलाने में भी अर्थापत्ति से नियत समय में प्रतिषेध सिद्ध होता है, जैसे आज हम सांझ को दरया जाएंगे, अर्थात् इस समय नहीं जाएंगे। इस प्रकार अर्थापत्ति से भी हमारे अनेक व्यवहार चलते हैं ॥

अर्थापत्ति का अनुमान में अन्तर्भाव } पर अर्थापत्ति भी अनुमान के अन्तर्गत ही है। यहां भी एक बात से दूसरी बात का ज्ञान तो शब्द शैली से निकल आता है, पर वैसा होता है, वा नहीं, यह अनुमान द्वारा निश्चित होता है, जैसे, जो २ कार्य है, वह अपने २ नियत कारण के होने पर होता है। अब इसका नियत कारण प्रत्यक्ष से वा परिशेष से मेघ सिद्ध होता है, इसलिए फलतः यह सिद्ध हुआ, कि मेघों के होने पर वर्षा होती है, इसी प्रकार यह युवा पुरुष रात को भोजन खाता है, क्योंकि दिन को न खाता हुआ भी हृष्टपुष्ट है। इस प्रकार अर्थापत्ति अनुमान से अलग प्रमाण नहीं है॥

अनुपलब्धि वा अभाव प्रमाण—अभाव का ज्ञान जिस से होता है, उसको अभाव प्रमाण वा अनुपलब्धि प्रमाण कहते हैं। इस प्रमाण का विषय यतः अभाव है। इसलिए पहले अभाव का निरूपण करना उचित है॥

पूर्व वर्णन कर आए हैं, कि अर्थ द्रव्य, गुण, कर्म इन तीनों को ही कहते हैं। पर पदार्थ इनके सिवाय भी हैं। जैसे सामान्य विशेष और समवाय भी पदार्थ हैं। पदार्थ उन सबको कहते हैं, जो किसी पद का अर्थ हैं, अर्थात् जिस के लिए हम कोई पद बोलते हैं। सो जैसे अर्थों की एक दूसरे के साथ समानता जितलाने के लिए सामान्यपद विशेषता जितलाने के लिए विशेषपद और नित्य संबंध जितलाने के लिए समवायपद बोलते हैं, इसी प्रकार किसी वस्तु का न होना जितलाने के लिए अभावपद बोलते हैं, जैसे यहां तेल का अभाव है इत्यादि। सो जब किसी वस्तु का न होना जितलाने के लिए अभावपद बोला जाता है, तो अभाव भी एक पदार्थ हुआ।

पदों से इस अनुभव की हमें प्रतीति भी होती है । यदि हमें कोई आज्ञा दे, कि अन्दर से तेल ले आओ, और हम अन्दर जाकर तेल न देखें, तो जैसे तेल के होते हुए तेल की प्रतीति होती, इसी प्रकार अब तेल न होते हुए उसके न होने (अभाव) की भी प्रतीति होती है, हमें प्रतीत होता है, कि तेल यहां नहीं है । इसलिए अभाव भी एक पदार्थ है । अब यह देखना है, कि जैसे रूप की प्रतीति एक ही प्रकार की नहीं होती, इसलिए हम हरा, पीला, नीला, श्वेत, काला इत्यादि भेद से अनेक प्रकार का रूप मानते हैं । क्या इसी प्रकार अभाव की प्रतीति भी अनेक प्रकार की होती है, वा एक ही प्रकार की । जब हम इस दृष्टि से देखते हैं, तो हमें प्रतीत होता है, कि अभाव के भी कई भेद हैं । जैसे कोई कहे, कि 'पीरू मर-गया' यहां पीरू के जैसे अभाव की प्रतीति होती है, उससे विलक्षण प्रतीति 'यहां पीरू नहीं' इस वाक्य से होती है । और इन दोनों से ही विलक्षण इस वाक्य से होती है, कि 'पीरू अभी नहीं आया' । पीरू का यहां अभाव तो सब में प्रतीत होता है, पर एक ही प्रकार का नहीं । इसलिए अभाव अनेक प्रकार का है । सो बतलाते हैं ॥

अभाव के भेद और उनके स्वरूप — अभाव के पहले दो भेद हैं । अन्योऽन्याभाव और संसर्गाभाव । जब हम यह कहते हैं, कि गौ घोड़ा नहीं है, तो यहां गौ की विद्यमानता वा घोड़े की विद्यमानता का निषेध नहीं किया, किन्तु गौ और घोड़े की तदात्मता (एक होने) का निषेध किया है । इस अभाव को अन्योऽन्याभाव इसलिए कहते हैं, कि गौ में घोड़े का अभाव

है, और घोड़े में गौ का अभाव है। गौ घोड़ा नहीं और घोड़ा गौ नहीं। अन्योऽन्याभाव एक ही प्रकार का होता है॥

दूसरा है संसर्गाभाव। किसी की विद्यमानता का निषेध संसर्गाभाव कहलाता है। जैसे यहां पीरू नहीं है, वा पीरू मर गया है, इत्यादि॥

संसर्गाभाव चार प्रकार का है। प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव सामयिकाभाव और अत्यन्ताभाव। प्रागभाव का अर्थ है, पहले अभाव। जब तक कोई वस्तु उत्पन्न नहीं हुई, उस समय उसकी अविद्यमानता है, यही अविद्यमानता प्रागभाव है। जैसे जब तक कपड़ा बना नहीं, तब तक कपड़े का प्रागभाव है। जब तक मेघ बना नहीं, तब तक मेघ का प्रागभाव है। दूसरा है प्रध्वंसाभाव, प्रध्वंस कहते हैं नाश को। जब कोई वस्तु नष्ट हो जाती है, उस समय जो उसकी अविद्यमानता होगई है, उसको प्रध्वंसाभाव कहते हैं। जैसे जब कपड़ा जल कर नष्ट होजाए, वा फाड़ दिया जाए, तो अब उस कपड़े का जो अभाव है, वह प्रध्वंसाभाव है। मेघ सूर्य की प्रचण्ड किरणों से विलीन होजाए, तो अब मेघ का जो अभाव है, वह प्रध्वंसाभाव है। तीसरा है सामयिकाभाव, सामयिक कहते हैं, जो किसी समय में होवे। जैसे कपड़ा यहां नहीं है, इससे यह नहीं प्रतीत होता, कि कपड़ा अभी बना नहीं, न यह, कि होकर नष्ट हो गया, किन्तु यह कि 'इस समय यहां कपड़ा नहीं है'। चौथा है अत्यन्ताभाव, जो अभाव सदा से हो, और सदा बना रहे, उसको अत्यन्ताभाव कहते हैं, जैसे वायु में रूप का अभाव। अग्नि में भार का अभाव॥

अर्थात् संसर्गाभाव चारों कालभेद से हैं, किसी वस्तु की उत्पत्ति से पहले २ जो उसका अभाव है, वह प्रागभाव है, यह तभी तक रहेगा, जब तक वस्तु उत्पन्न नहीं हुई, वस्तु उत्पन्न हुई, तो यह अभाव जाता रहा, अब यह अभाव फिर मुड़कर कभी नहीं आएगा, क्योंकि नाश के पीछे उस वस्तु का प्रध्वंसाभाव होगा, प्रागभाव नहीं। यह तो हुआ वस्तु की उत्पत्ति से पहले जो उसका अभाव है। अब वस्तु जब तक बनी रहेगी, तब तक उसका अभाव नहीं कह सकते, क्योंकि वह वस्तु विद्यमान है, पर उस समय भी एक प्रकार का अभाव कहा जाता है, जब हम कहते हैं, कि कपड़ा यहां नहीं है, रमेश घर नहीं है, उमेश पुल पर नहीं है, इत्यादि। इस प्रकार के अभाव को सामयिकाभाव कहते हैं। यह आदि अन्त वाला है। जब फिर वस्तु नष्ट हो जाती है, तब उसका प्रध्वंसाभाव हो जाता है। यह प्रध्वंसाभाव सदा बना रहेगा, इसका अन्त नहीं होगा। क्योंकि जब किसी वस्तु की मुड़कर उत्पत्ति होगी, तो वह एक नई उत्पत्ति होगी, पहली का ध्वंस नहीं मिटेगा, यदि पहली का ध्वंस मिटे, तो वही वस्तु लौटी चाहिये, पर लौटती नहीं, नई उत्पत्ति होती है, इसलिए प्रध्वंसाभाव आगे सदा बना रहता है॥

सो चारों संसर्गाभाव काल भेद से इस प्रकार होते हैं। ऐसा अभाव, जिसका आदि नहीं, पर अन्त है, यह है प्राग भाव। क्योंकि जो उत्पत्ति अब हुई है, यह अभी हुई, पहले कभी नहीं हुई, पहले जो उत्पत्तियां हुई हैं, वे इस जैसी थीं, यह न थी। इसलिए इससे पहले इस काल की इस वस्तु का जो अभाव था, वह सदा से चला आता था। दूसरा ऐसा

अभाव है, जिसका आदि है, पर अन्त नहीं, यह है प्रध्वंसाभाव। तीसरा अभाव, जिसका आदि भी है, और अन्त भी है, यह है सामयिकाभाव, चौथा अभाव, जिसका न आदि है, न अन्त है, यह है अत्यन्ताभाव ॥

चार संसर्गाभाव और पांचवां अन्योऽन्याभाव मिलाकर सारे पांच अभाव हैं । इनमें से प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव तो उत्पत्ति वाली वस्तुओं का ही होता है । नित्य वस्तुओं का नहीं, सामयिकाभाव नित्य अनित्य दोनों का होता है, नित्य का, जैसे यहां पृथिवी के परमाणु नहीं हैं । पर सामवायिकाभाव होता उसी का है, जो परिच्छिन्न वस्तु हो, व्यापक का नहीं,क्योंकि वह सदा सर्वत्र रहता है । अन्योऽन्याभाव विभु का भी होता है,क्योंकि इस अभाव में देशकाल का सम्बन्ध नहीं होता, वस्तु का सम्बन्ध होता है, 'सूर्य ईश्वर नहीं' यह ईश्वर का सूर्य में अन्योऽन्याभाव है । संसर्गाभाव की प्रतीति किसी आधार में होती है ॥

अभाव का प्रतियोगी और अनुयोगी-अभाव का एक प्रतियोगी और एक अनुयोगी होता है । संसर्गाभाव में तो जिसका अभाव हो, वह प्रतियोगी, और जिसमें वा जिस पर अभाव की प्रतीति हो, वह अनुयोगी होता है । जैसे 'मेज़ पर कोई पुस्तक नहीं है' यहां पुस्तक का अभाव मेज़ पर बतलाया है, इस अभाव का पुस्तक प्रतियोगी है, और मेज़ अनुयोगी है । 'वायु में रूप नहीं होता' इस अभाव का रूप प्रतियोगी है, वायु अनुयोगी है । अन्योऽन्याभाव में जिस के साथ 'नहीं' शब्द लगे, वह प्रतियोगी और दूसरा अनुयोगी होता है । जैसे 'आग पानी नहीं' यहां पानी प्रतियोगी आग

अनुयोगी है। संसर्गाभाव का अपने प्रतियोगी से विरोध होता है, जहां प्रतियोगी हो, वहां उसका अभाव नहीं रहता, जैसे जहां पुस्तक है, वहां पुस्तक का अभाव नहीं है। पर अन्योऽन्याभाव का प्रतियोगी के साथ विरोध नहीं होता, जहां प्रतियोगी रहता है, वहां उसका अन्योऽन्याभाव भी रहता है। जैसे मेज पर पुस्तक पड़ा हुआ हो, तौ भी कह सकते हैं, कि 'मेज पुस्तक नहीं है'॥

अभाव प्रमाण—अभावों का निरूपण हुआ, अब इन अभावों का ज्ञान किस प्रकार होता है, इसका निरूपण करते हैं। जब हम कहते हैं, कि यहां घड़ा नहीं है, तो प्रश्न यह है, कि घड़े का अभाव हमने कैसे जाना, क्योंकि घड़े को तो हम आंख से देख लेते हैं, क्योंकि घड़ा उद्भूतरूप वाला है, पर घड़े के अभाव को आंख से कैसे प्रत्यक्ष देखें, क्योंकि घड़े का अभाव न स्वयं रूप है, न रूपवान् है, नेत्रों से वह कैसे दीख सकता है? इसका उत्तर यह है, कि घड़े का अभाव अनुपलब्धि से जाना जाता है। अनुपलब्धि है, उपलब्ध न होना। घड़ा होता है, तो उपलब्ध हो जाता है, उसका उपलब्ध न होना इस बात का प्रमाण है, कि वह नहीं है। सो अनुपलब्धि अभाव को जितलाती है, इसलिए अभाव ज्ञान में अनुपलब्धि प्रमाण है। अनुपलब्धि प्रमाण को ही अभाव प्रमाण भी कहते हैं। अभावों का ज्ञान सर्वत्र अनुपलब्धि (अभाव प्रमाण) से होता है। वायु में रूप नहीं है। इसका ज्ञान वायु में रूप की अनुपलब्धि से हुआ, यही प्रमाण हुआ। अग्नि में गुरुत्व का अभाव है। यह ज्ञान अग्नि में गुरुत्व की अनुपलब्धि से हुआ, इस प्रकार अनुपलब्धि का भी बहुत विषय है॥

अनुपलब्धि का प्रत्यक्ष अनुमान में अन्तर्भाव

अनुपलब्धि से अभाव का ज्ञान होता है, यह सत्य है, पर अनुपलब्धि कोई स्वतन्त्र प्रमाण नहीं, प्रत्यक्ष और अनुमान के ही अन्तर्गत है। जिस इन्द्रिय से जैसी अवस्था में जिस वस्तु का प्रत्यक्ष होता है, उसी इन्द्रिय से वैसी अवस्था में उस वस्तु के अभाव का भी प्रत्यक्ष होता है, जैसे नेत्र से घड़े का प्रत्यक्ष होता है, तो नेत्र से घड़े के अभाव का भी प्रत्यक्ष होता है, अतएव हम नेत्र से देखकर कह देते हैं, कि यहां घड़ा नहीं है। घड़े का चाक्षुष प्रत्यक्ष तब होता है, जब वह प्रकाश में हो, हमारे नेत्रों के सम्मुख हो, और बीच में कोई आड़ न हो, घड़े के अभाव का प्रत्यक्ष भी ऐसी ही अवस्था में होता है, अन्धेरे में घड़े के अभाव का प्रत्यक्ष नहीं होगा, पीठ की ओर घड़े के अभाव का प्रत्यक्ष नहीं होगा, दीवार के परली ओर घड़े के अभाव का प्रत्यक्ष नहीं होगा। त्वचा से घड़े का प्रत्यक्ष अन्धेरे में भी हो जाता है, इसलिए त्वचा से घड़े के अभाव का प्रत्यक्ष अन्धेरे में भी हो जाता है, अन्धेरे में हम नेत्र से देखकर तो नहीं कह सकते, कि यहां घड़ा नहीं है, पर हाथ से टटोल कर वहां भी कह-सकते हैं, कि यहां घड़ा नहीं है। सुख का प्रत्यक्ष 'मैं सुखी हूं' इस प्रकार अपने मन से होता है, सुख के अभाव का प्रत्यक्ष 'मैं सुखी नहीं हूं' यह भी अपने मन से होता है। इस प्रकार जिस इन्द्रिय से जिस वस्तु का प्रत्यक्ष होता है, उसी से उसके अभाव का प्रत्यक्ष होता है। जिस वस्तु का प्रत्यक्ष नहीं होता, उसके अभाव का भी प्रत्यक्ष नहीं होता, जैसे प्रकाश में भी अणुओं का प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिए अणुओं के अभाव का

भी प्रत्यक्ष नहीं होता। नेत्र से देखकर जैसे हम यह कह देते हैं, कि यहां घड़ा नहीं है, वैसे यह नहीं कह सकते, कि यहां अणु नहीं हैं। संसर्गाभाव और अन्योऽन्याभाव में इतना भेद है, कि संसर्गाभाव में तो जिस वस्तु का अभाव कहना है, वह वस्तु यदि प्रत्यक्ष योग्य हो, तो उसके अभाव का प्रत्यक्ष होता है, जैसे घड़ा प्रत्यक्ष योग्य है, तो घड़े के अभाव का प्रत्यक्ष होता है, अणु प्रत्यक्ष योग्य नहीं हैं, तो अणुओं के अभाव का प्रत्यक्ष नहीं होता, पर अन्योऽन्याभाव में कोई एक भी प्रत्यक्ष के योग्य हो, तो दोनों का अन्योऽन्या भाव प्रत्यक्ष होता है। जैसे 'घड़ा वस्त्र नहीं' इस प्रकार घड़े का वस्त्र से अन्योऽन्याभाव अर्थात् भेद प्रत्यक्ष है, वैसे 'सूर्य ईश्वर नहीं' इस प्रकार सूर्य का ईश्वर से वा 'ईश्वर सूर्य नहीं' इस प्रकार ईश्वर का सूर्य से भेद भी प्रत्यक्ष है। पर अणु ईश्वर नहीं हैं, यह भेद प्रत्यक्ष नहीं होता, क्योंकि यहां दोनों में से कोई भी प्रत्यक्ष योग्य नहीं॥

और जो वस्तु केवल अनुमान से जानी जाती है, उसका अभाव भी अनुमान से ही जाना जाता है। जैसे पराया सुख अनुमान से जाना जाता है, तो पराये सुख का अभाव अर्थात् 'वह सुखी नहीं है' भी अनुमान से ही जाना जाता है। इस प्रकार अभाव प्रत्यक्ष और अनुमान के अन्तर्गत ही है, अलग प्रमाण नहीं॥

(प्रश्न) प्रत्यक्ष जब इन्द्रियों के सम्बन्ध से होता है, तो अभाव प्रत्यक्ष में वह क्या वस्तु है, जिसके साथ इन्द्रियों का सम्बन्ध होता है॥

(उत्तर) भाव और अभाव के प्रत्यक्ष में यह भेद है, कि भाव का प्रत्यक्ष तो इन्द्रिय का वस्तु के साथ सम्बन्ध होने से

होता है, पर अभाव का प्रत्यक्ष इन्द्रिय से उस वस्तु के उपलब्ध न होने से होता है। आंख से हम देखते हैं, तो जहां घड़ा होता है, वहां उपलब्ध होता है, अब जहां आंख से देखने पर उपलब्ध नहीं होता, वहां उसका अभाव प्रत्यक्ष होता है। अनुपलब्धि से अभाव प्रत्यक्ष होता है। सो भाव प्रत्यक्ष की नाईं अभाव प्रत्यक्ष में भी मुख्य कारण इन्द्रिय ही हैं, अनुपलब्धि सहकारी कारण है। क्योंकि घड़े की नाईं घड़े के अभाव का भी प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, परोक्ष नहीं, इसलिए प्रत्यक्ष योग्य का अभाव प्रत्यक्ष माना है। और यदि सारे ही अभावों का परोक्ष ज्ञान मानो, तो अनुपलब्धि केवल अनुमान के अन्तर्गत होगी॥

सम्भव प्रमाण अधिक परिमाण से न्यून परिमाण की सिद्धि जिस से होती है, वह सम्भव प्रमाण है। जैसे जो क्रोड़पति है, वह लक्षपति है, यह सम्भवतः सिद्ध हो जाता है, क्योंकि करोड़ लक्ष हुए बिना हो नहीं सकता। सो करोड़ में लक्ष, सौ में पचास, मन में २० सेर घुमाओं में ४ कनाल की सिद्धि सम्भव प्रमाण से होती है॥

सम्भव का अनुमान में अन्तर्भाव पर सम्भव भी अनुमान के ही अन्तर्गत है। यद्यपि धूम से अग्नि के अनुमान में व्याप्य से व्यापक की सिद्धि की जाती है, और सम्भव में उलटा व्यापक से व्याप्य की सिद्धि होती है। पर अधिक परिमाण न्यून परिमाण के बिना हो नहीं सकता, इसलिए अधिक परिमाण न्यून परिमाण की सिद्धि का अव्यभिचारी हेतु बन जाता है॥

ऐतिह्यप्रमाण—जो पुरानी घटना लोगों में कहावत के तौर पर चली आती हो, और उसके मूलवक्ता का कोई पता न लगे, उसकी सिद्धि **ऐतिह्यप्रमाण** से होती है। जैसे 'दसूहा' नगर का असली नाम 'दस्युहा' है। और यह राजा विराट् की नगरी थी, यहां जिस किले के खंडर हैं, वह उसी समय का किला है॥

ऐतिह्य का अनुमान में अन्तर्भाव } ऐसी बात यदि यथार्थ हो, तो शब्द प्रमाण होकर अनुमान के अन्तर्गत हो जाती है, और यदि अयथार्थ हो, तो प्रमाण ही नहीं मानी जाती॥

अपनी २ वंश परम्परा में लोग प्रायः ऐतिह्यप्रमाण ही रखते हैं॥

चेष्टा—हाथ पाओं आदि की चेष्टा (इशारे) भी शब्दानुमान द्वारा वा साक्षात् अनुमान के अन्तर्गत हैं॥

संकेत—झंडियों के संकेत को देखकर जो यह ज्ञान होता है, कि 'यह मार्ग उत्सव स्थान को जाता है' 'यहां २ भजन मण्डलियां ठहरेंगी' 'इस मार्ग से वायसराय जाएंगे' इत्यादि। यह संकेत भी एक चिन्ह हैं, इसलिए अनुमान के अन्तर्गत हैं॥

इस प्रकार सभी प्रमाण प्रत्यक्ष और अनुमान के अन्तर्गत हो जाते हैं॥

चार्वाक मत का खण्डन।

इन दोनों प्रमाणों में से भी चार्वाक अनुमान को प्रमाण नहीं मानते, वे कहते हैं। अनुमान का सारा निर्भर इस बात पर है, कि हम जिन दो पदार्थों को एक साथ देखते रहते हैं, उनमें

से एक को देखकर दूसरे का उसके साथ निश्चय कर लेते हैं, जैसे धूम को देखकर अग्नि का निश्चय कर लेते हैं। पर यह निर्भर कैसा कच्चा है, भला जब अग्नि एक अलग पदार्थ है, और धूम एक अलग, तो फिर यह नियम कैसे हो सकता है, कि जहां धूम है, वहां अग्नि है। जिन पदार्थों के मेल से धूम बना है, वे यदि बिना अग्नि के उसी तरह किसी भांति मिल जाएं वा मिला दिये जाएं, तो बिना अग्नि के धूम उत्पन्न हो जाएगा। अथवा अग्निजन्य धूम को ही बन्द करके वहां ले जाकर छोड़ दें, जहां अग्नि नहीं, तो वह धूम बिना अग्नि के होगा ॥

लो हम तुम को एक सुगम रीति बतलाते हैं—धूम को एक बड़ी मशक में भरलो, और अधिक सर्दी गर्मी से बचाने का उपाय करके उसका मुंह ऊपर रखकर एक तालाब में उतारदो, और मुंख खोलदो, धूम वहां से ज्यों का त्यों निकलने लगेगा, अब उस धूम को देखकर जो अग्नि का अनुमान करके वहां पहुंचेगा, वह ऐसी जगह पहुंचेगा, जहां यही नहीं, कि अग्नि है नहीं, बल्कि दूसरी जगह से लाकर रक्खी जाए, तो भी न रहे, और यदि वह अग्नि तापने के लिए गया हो, तो और भी ठिठुर जाए। अब बताओ, उसको तुम्हारा अनुमान प्रमाण होगा वा नहीं। यही दशा सारे अनुमानों की है। इसलिए अनुमान प्रमाण नहीं ॥

इसका उत्तर यह है, कि 'अनुमान प्रमाण नहीं' यह भी तो तुम अनुमान से ही सिद्ध कर रहे हो, प्रत्यक्ष तो यह भी

नहीं। अर्थात् अनुमान की प्रमाणता का खण्डन भी तुम इस अनुमान से करते हो—

जो ज्ञान व्यभिचारी होता है, वह प्रमाण नहीं होता।
अनुमान व्यभिचारी है।
इसलिए प्रमाण नहीं॥

इस पर हम यह पूछते हैं, कि यह तुम्हारा अनुमानप्रमाण है, वा नहीं, यदि है, तो अनुमान प्रमाण सिद्ध होगया, और यदि नहीं, तो इससे अनुमान की प्रमाणता का खण्डन न हुआ, तुमने जिस प्रकार अनुमान के खण्डन में बल लगाया है, उससे अनुमानमात्र का खण्डन नहीं होता, व्यभिचारी अनुमान का खण्डन होता है। सो अभीष्ट ही है। व्यभिचारी अनुमान को हम भी प्रमाण नहीं मानते। धूम अग्नि का कार्य-कारण-भाव है, इसलिए धूम अग्नि का व्यभिचारी नहीं, यह पूर्व लिख आए हैं॥

किञ्च—तुम जो कहते हो 'अनुमान प्रमाण नहीं' यह किस के प्रति कहते हो। क्योंकि पुरुष चार प्रकार के होते हैं। **विज्ञ, अज्ञ, संदिग्ध और भ्रान्त**। विज्ञ ठीक जानने वाला, अज्ञ अज्ञान वाला, संदिग्ध संशय वाला, भ्रान्त, भ्रान्ति वाला। जो ठीक जानता है, वह तो जानता ही है, उसके लिए तो कुछ कहना ही नहीं होता, किन्तु अज्ञ संदिग्ध और भ्रान्त के लिए ही कहा जाता है, ताकि अज्ञ का अज्ञान मिटे, संदिग्ध का संशय मिटे, और भ्रान्त का भ्रम दूर हो। अब यदि कहो, कि हम भी इसी प्रयोजन के लिए इन्हीं तीनों के प्रति कहते हैं,

कि 'अनुमान प्रमाण नहीं' तो हम पूछते हैं, कि तुमने उनका अज्ञान संशय भ्रम कैसे जाना, क्योंकि दूसरे का अज्ञान संशय भ्रम दूसरे को कभी प्रत्यक्ष नहीं होता, और तुम प्रत्यक्ष से अतिरिक्त कोई प्रमाण नहीं मानते। दूसरे का अज्ञान संशय और भ्रम उसके वैसे वचनों से अनुमान करना होगा, इसलिए 'अनुमान प्रमाण नहीं' ऐसा कहने के लिए ही तुम्हें बिना इच्छा के भी अनुमान प्रमाण मानना पड़ेगा ॥

प्रमाणों का विषय समाप्त हुआ ॥

यद्यपि प्रमाणों के विषय में और बहुत कुछ लिखा जा-सकता है, पर यह न्याय-प्रवेशिका है, इसमें बहुत गम्भीर विचार वा वादविवाद नहीं लिखे। न्याय-सम्बन्धी हरएक विषय पर सूक्ष्म विचार **न्याय-प्रकाश** में लिखे जाएंगे ॥

प्रमेयों का भी यहां कोई वर्णन नहीं किया। यहां केवल यही अभिप्रेत था, कि हरएक मनुष्य के साथ—चाहे वह किसी भी मत वा सम्प्रदाय का हो—बातचीत करने में जो निर्विवाद मार्ग है, वह दिखला दिया जाए। सो अर्थ परमार्थ सम्बन्धी विषयों का मनन करने के लिए जितना अंश न्याय का उपयोगी था, वह सारा यहां लिख दिया है। इस पर अभ्यास करने से गम्भीर पदार्थों के मनन करने में भी कहीं रुकावट नहीं होगी ॥

इससे अगले ग्रन्थ में सिद्धान्तों पर विचार होगा ॥

* न्याय-प्रवेशिका समाप्त *

—:*:—